Use of RTI by Prisoners

A Case Study covering Tihar and Arthur Road Jail

Submitted By

Afroz Alam Sahil

Independent Journalist and RTI Activist

Department of Personnel and Training
Ministry of Personnel, Public Grievances & Pensions
Government of India

552

प्रस्तावना

जैसा कि सर्वविदित है कि किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता ही मालिक होती है भारत इसका अपवाद तो नहीं है, लेकिन आज़ादी के छः से अधिक दशकों के बाद भी देश की अधिकांश आबादी अपने आपको मालिक की हैसियत में नहीं पाती है. इसके पीछे सामाजिक-आर्थिक विषमताओं से लेकर अवसरों की असमानता, शिक्षा का अभाव तथा जागरूकता की कमी जैसे बहुत से कारण रहे हैं. ऐसी स्थिति में पिछली संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने सन् 2005 में भारत की जनता को सूचना का अधिकार दिया, जिसका उद्देश्य यह था कि सरकारी मशीनरी में पारदर्शिता और जनता के प्रति जवाबदेही बहाल हो.

इस कानून ने पहली बार देश की अधिकांश आबादी को असली मालिक होने का अहसास दिलाया और जनता ने भी इस अधिकार के प्रयोग में बढ़-चढ़ कर भागीदारी की. सामान्य जनमानस के अतिरिक्त इस अधिकार के उपयोग में भारत के जेलों में बंद बहुत सारे विचाराधीन/ सज़ायाफ्ता क़ैदी भी बहुत पीछे नहीं रहे हैं. यह क़ानून इनके लिए भी वरदान साबित हुआ है.

आरटीआई ने ही क़ैदियों को यह सुविधा दी कि वह जेल में रहते हुए भी बाहर की दुनिया में हिस्सा ले सकते हैं. किसी भी तरह की सूचना हासिल कर सकते हैं. इस तरह से यह कहा जा सकता है कि क़ैदियों को समाज से बाहर रखने की जो धारणा थी, उसे क़ैदिया के ज़रिए आरटीआई का इस्तेमाल चुनौती दे रहा है.

यह अध्ययन जेल में बंद कैदियों द्वारा सूचना के अधिकार के प्रयोग तथा उससे संबंधित अन्य मुद्दों पर केन्द्रित है. इस अध्ययन में भारत की दो प्रमुख जेलों --तिहाड़ (दिल्ली) और आर्थर रोड जेल (मुम्बई) की केस स्टडी है.

इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य दिल्ली के तिहाड़ और मुम्बई के आर्थर रोड जेल के कैदियों के द्वारा फाईल की गई आरटीआई आवेदन की देखना व समझना था. साथ ही यह भी देखना कि क़ैदियों के द्वारा फाईल किए गए आवेदन में प्रश्नों की प्रकृति क्या है? आख़िर कैदियों को कौन सी ऐसी बातें प्रेरित कर रही है कि वो आरटीआई का इस्तेमाल जेल के अंदर रहकर भी कर रहे हैं? साथ ही यह भी समझना कि क़ैदियों को आरटीआई फाईल करने और जवाब मिलने में किन-किन कठिनाईयों व परेशानियों से गुज़रना पड़ता है.

यह अध्ययन प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्त्रोतों पर आधारित है. हालांकि प्राथमिक स्त्रोत की कुछ सीमाएं भी रही हैं. जैसे कि जेल प्रशासन ने शोधार्थी को व्यक्तिगत रूप से जेल में बंद कैदियों से मिलने व बात करने की अनुमति नहीं प्रदान की. आर्थर रोड जेल प्रशासन ने सहयोग के नाम पर जन सूचना अधिकारी से मिलने व बातचीत करने की अनुमति दी. तो वहीं तिहाड़ जेल प्रशासन ने भी जन सूचना अधिकारी से मिलने व बातचीत

के साथ-साथ हमारी प्रश्नावली को जेल के भीतर कुछ कैदियों से भरवाया. हालांकि अपने व्यक्तिगत प्रयास के माध्यम से शोधार्थी सात ऐसे व्यक्तियों से मिलने में सफल रहा, जो अभी विचाराधीन हैं और ज़मानत पर रिहा हैं. इन लोगों ने जेल के भीतर रहते हुए सूचना के अधिकार का बख़ूबी इस्तेमाल किया.

यह अध्ययन चार अध्यायों में विभाजित है. पहला अध्याय सूचना के अधिकार के महत्व और उसके इतिहास की व्याख्या करता है. दूसरा अध्याय जेल के पूरे सिस्टम और उसमें सूचना की अहमियत पर प्रकाश डालता है. तीसरे अध्याय में कैदियों द्वारा सूचना के अधिकार के प्रयोग और उसमें आने वाली बाधाओं की चर्चा करता है. वहीं चौथा अध्याय पूरे अध्ययन का सार प्रस्तुत करता है और महत्वपूर्ण सुझाव भी देता है .

554

अनुक्रम

प्रस्तावना 2

अध्याय -1

परिचय 5

भारत में सूचना के अधिकार का इतिहास 7

Review of Literature साहित्यावलोकन) 17

Limitations (सीमाएं) 24

अध्याय -2

जेल : व्यवस्था का एक अहम हिस्सा 25

अध्याय -3

सूचना और जेल 32

आर्थर रोड जेल में कैदियों द्वारा आरटीआई का उपयोग 33

तिहाड़ जेल के क़ैदियों द्वारा आरटीआई का उपयोग 35

जेल में ही रूबरू हुए आरटीआई क़ानून से... 37

क़ैदी क्यों डालते हैं आरटीआई? 38

क्या सूचना मांगते हैं जेल के क़ैदी? 40

कितना मुश्किल है जेल में सूचना पाना? 42

क़ैदी क्या सोचते हैं आरटीआई के बारे में? 44

अध्याय -4

निष्कर्ष 46

सुझाव 48

परिशिष्ट 49-59

अध्याय-1

परिचय

विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में लोकतंत्र की स्थापना के बाद से ही जनता को सशक्त करने के प्रयास किए जाते रहे हैं. 2005 में बनाया गया सूचना का अधिकार क़ानून जनता को सशक्त करने की दिशा में सरकार का सबसे अहम क़दम है.

लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम आदमी ही वोट देकर सरकार चुनता है और उसके टैक्स के पैसे से ही सरकार चलती हैं. सरकार की नीतियों और फ़ैसलों में भी आम आदमी की भागीदारी होती है. सूचना का अधिकार सरकार के कामकाज मे पारदर्शिता सुनिश्चित कर जनता की इसी भागीदारी को मज़बूत करता है.

सच्चे अर्थों में लोकतंत्र में जनता ही देश की असली मालिक है. इसलिए मालिक होने के नाते जनता को यह जानने का हक़ है कि जो सरकार उसकी सेवा के लिए बनाई गई है वह क्या, कहां, और कैसे काम कर रही है? उनका पैसा कहां ख़र्च किया जा रहा है? जनता के यह जानने का अधिकार ही 'सूचना का अधिकार' है.

सूचना के जनता के बीच ज़ाहिर होने का दबाव सरकारों को पारदर्शी होकर जनहित में काम करने के लिए मजबूर करता रहता है. यानी सूचना का अधिकार सरकार के लिए एक 'वॉचडॉग' का काम भी करता है. इस लिहाज़ से सूचना एक शस्त्र है, सत्ता है, और एक बड़ी शक्ति है.

इसलिए सूचनाओं को छुपाने के हरसंभव प्रयास भी किए जाते रहे हैं. शायद यही वजह है कि अंग्रेज़ों की दासता से आज़ादी मिल जाने के बाद भी 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' पर हमले लगातार होते रहे.

भारत में ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट के नाम पर अपने लोगों के अधिकारों का हनन किया जाता रहा था. लोगों के जीवन से जुड़ी सूचनाए छुपाई जाती रहीं. इसी अधिकारों के हनन ने इस देश में सूचना के अधिकार की मांग को लेकर एक आंदोलन को जन्म दिया.

'जब-जब अधिकारों के हनन की बात होती है, लोकतंत्र की प्रणाली व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न प्रकार के घटकों का सहारा लेकर इसका रक्षा करता है.'[1]

---

[1] ये घोषणा साल्विन टॉफलर और फ्रांसिस फुकुयामा जैसे चिंतकों ने की थी फुकुयामा की पुस्तक 'द इंड ऑफ हिस्ट्री एंड द लास्ट मैन' इतिहास के अंत की बात करता है.

सूचना के अधिकार से जुड़े अभियान ने भी यही कार्य किया. क्योंकि 'लोकतंत्र एक शब्द नहीं है. यह सिद्धांत भी है और व्यवहार भी.' गर्व की बात यह है कि तमाम चुनौतियों के बावजूद देश में लोकतांत्रिक मूल्य बरक़रार रहे जिसके कारण ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार ही आगे चलकर सूचना के अधिकार का रूप भी ले सका. और आज सूचना का यह अधिकार स्वतंत्रता व जानने के अधिकार की महत्वपूर्ण कड़ी बन गया है.

12 अक्टूबर, 2005 तक इस देश की जनता की सरकार में भागीदारी सिर्फ वोट देने के अधिकार तक ही सीमित थी. लेकिन अब लोगों के पास सूचना के अधिकार जैसा प्रभावी क़ानून भी है.

इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि 'किसी लोकतंत्र में किसी भी तरह की प्रक्रिया, मूल्यों का क्रियान्वयन व निर्वहन लोकतांत्रिक रीति से ही हो. और यह तभी संभव है, जब देश की जनता को सूचना का अधिकार हासिल हो. बिना सूचना के अधिकार के मताधिकार दरअसल एक खाली म्यान की तरह है, जिसमें जिम्मेदारी व जागरूकता रूपी तलवार का अभाव है. यह सामाजिक ज़िम्मेदारी व राजनीतिक जागरूकता तभी आ पाती है, जब जनता को प्रशासन संबंधी महत्वपूर्ण सूचनाओं का ज्ञान हो.'[2]

मजदूर किसान शक्ति संगठन से जुड़े सामाजिक कार्यकर्ता निखिल डे के मुताबिक 'आज़ादी के बाद पहली बार देश के हर नागरिक को सरकारी कर्मचारियों, नेताओं पर निगरानी रखने तथा लोकतंत्र में वास्तविक राजा बनने का अवसर इस क़ानून से मिला है.'

सूचना का अधिकार आंदोलन की जन्मदाता अरूणा राय के मुताबिक सूचना के अधिकार कानून के लागू होने से भारतीय लोकतंत्र के फेफड़ों को नई सांसे मिली हैं इन क़ानून ने आम जनता को इंस्पेक्टर तथा ऑडिटर बना दिया है.

इस प्रकार देखें तो सूचना का अधिकार लोकतंत्र रूपी दिये के लिए सिर्फ तेल व बाती ही नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक माचिस की तीली भी है, जिससे लोकतंत्र का दिया प्रकाशित किया जाता है.

सूचना का अधिकार जनता के हाथ में एक ऐसे यंत्र की तरह है जिसके ज़रिए वह जान सकता है कि उसके प्रतिनिधि क्या काम कर रहे हैं? इसने अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में प्रत्यक्ष लोकतंत्र का एक नया रूप प्रस्तुत किया है अब जन-प्रतिनिधि और जनसेवक गोपनीयता की आड़ में अपने स्वार्थों को पूरा नहीं कर सकते. यह अधिकार इन जनसेवकों आर प्रतिनिधियों की जवाबदेही तय करता है.

---

[2] अभिनव उपाध्याय, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सूचना का अधिकार एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोध पत्र –गोरखपुर विश्वविद्यालय, 2011

हालांकि लोकतंत्र को जनता का जनता के लिए और जनता द्वारा शासन कहा जाता है. सूचना के अधिकार ने लोकतंत्र की इस परिभाषा को सार्थक बनाने का प्रयास किया है. अब नागरिक कोई भी सरकारी दस्तावेज़ देख सकता है, जनहित में किए गए काम का निरीक्षण कर सकता है और हर ग़लत काम के लिए उत्तरदायी अधिकारियों से जवाब तलब कर सकता है. सूचना के इस अधिकार के ज़रिए शासन प्रशासन के क्रियाकलापों की विसंगतियों को उजागर करके सही दिशा में ले जाने की ज़बरदस्त संभावना उत्पन्न हुई है

सच पूछे तो सूचना के अधिकार ने भारतीय लोकतंत्र को एक नई दिशा में आगे बढ़ाया है, जहां आम आदमी को अपने काम के लिए नौकरशाहों के आगे गिडगिड़ाना नहीं पड़ता. वह हक्क से पूछ सकता है कि उसका काम क्यों नहीं हुआ या इस लापरवाही के पीछे कौन है?

सूचना के अधिकार का यह कानून 12 अक्तूबर 2005 से जम्मू-कश्मीर राज्य[3] को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू है.

भारत में सूचना के अधिकार का इतिहास

आमतौर पर भारत में सूचना का अधिकार का इतिहास कुछ गांवों के जन आन्दोलनों से जोड़ कर देखा जाता है. चाहे वह राजस्थान में 'मज़दूर किसान शक्ति संगठन का 'जीने और जानने' का एक अनूठा प्रयोग हो या दिल्ली में 'परिवर्तन'का सिस्टम में परिवर्तन लाने का संकल्प या फिर महाराष्ट्र में अन्ना हज़ारे का आन्दोलन...

दरअसल, यह आन्दोलन न्यूनतम मज़दूरी की सही मांग से जुड़ा था, जो भ्रष्टाचार को मिटाने की न्यायपूर्ण मांग थी. इसी आन्दोलन के प्रयत्न से सरकार पर दबाव डाला गया कि वह सूचना के अधिकार क़ानून को न केवल विशेष रूप से बनाए, बल्कि उसे व्यावहारिक रूप से लागू करे.

इस प्रकार भारत में सूचना के अधिकार को एक क़ानून बनाने में इन आन्दोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. लेकिन इसके विपरित एक सच यह भी है कि सरकारी सिस्टम में ऐसे कई व्यक्ति थे, जो सूचना के अधिकार के पक्षधर थे.

दूसरे प्रेस आयोग का रोल भी काफी अहम रहा है. '1952 में भारत में पहला प्रेस आयोग बना. प्रेस से संबंधित विभिन्न मामलों पर सुझाव देने के लिए सरकार ने इस आयोग का गठन किया.'[4] इस आयोग ने 1954 में इस संबंध में अपनी रिपोर्ट सौंपी इस रिपोर्ट में कहा गया था –'सरकारी सूचनाओं को सार्वजनिक किया जाना

[3] जम्मू और कश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग हैं लेकिन ''केन्द्रीय सूचना का अधिकार अधिनियम-2005'' इस राज्य में प्रभावी नहीं हो सकता, क्योंकि यहां धारा 370 लागू है. हालांकि जम्मू और कश्मीर का अपना एक अलग सूचना कानूनहै.

[4] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अध्याय-4, पृष्ठ-55, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

जनता के हित में है. उन्हें आपातकालीन अथवा युद्धकालीन परिस्थितियों का तर्क देकर गोपनीय रखने का कोई औचित्य नहीं है...'[5]

सूचना का यह अधिकार भारत के संविधान से भी जुड़ा है. 'संविधान की धारा-19, 21 और 239 इसकी वकालत करते हैं.'[6] इसके अलावा 'संविधान के अनुच्छेद-32 द्वारा संवैधानिक उपायों का अधिकार दिया गया है. कोई भी नागरिक अपने मौलिक अधिकारों का हनन होने पर विधि द्वारा न्यायालय में उपाय के लिए आवेदन कर सकता है. अनुच्छेद-51 (क) में नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है, परन्तु कोई भी नागरिक अपने कर्तव्यों का पालन तभी कर सकता है, जब उसे सभी जानकारी प्राप्त हो.'[7]

कुछ अन्य क़ानून भी इसे आधार प्रदान करते हैं. जिनमें विशेष स्थितियों में सूचना प्राप्ति के अधिकार की बात कही गई है. जैसे –'भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा-76 में सूचना की स्वतंत्रता की बात अपरिपक्व अवस्था में कही गई है. इस प्रावधान के अनुसार लोक अधिकारी के लिए आवश्यक है कि सरकारी दस्तावेज़ों की प्रतिलिपियां उन्हें दिखाए, जिन्हें उनका निरीक्षण करने का अधिकार हो. फैक्ट्री अधिनियम-1948 में कहा गया है कि यह आवश्यक है कि फैक्ट्री में काम कर रहे मज़दूरों को अनिवार्य रूप से वह सूचना प्रदान की जाए, जो काम करते समय आने वाले खतरों से संबंधित हो काम की परिस्थितियों से मजदूरों के स्वास्थ्य पर होने वाले असर की जानकारी भी उन्हें देना आवश्यक है.'[8]

'इसके अलावा द एटॉमिक एनर्जी एक्ट-1962 एवं संशोधित एक्ट 1986 व 1987, द मेडिकल टरमिनेशन ऑफ प्रेग्नेन्सी एक्ट-1971, द इंडियन पोस्ट ऑफिस (संशोधित) बिल -2002, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट-1934, कस्टम एक्ट-1962, कस्टम टैरिफ एक्ट-1975 और कस्टम वैलूएशन रूल्स-1988 में भी खास परिस्थिति में सूचना देने या न देने की बात कही गई है.'[9]

भारत के विभिन्न न्यायालयों में समय-समय पर अधिकारों को लेकर विभिन्न निर्णय आते रहे हैं. कुछ फैसले ऐसे भी आएं, जिनमें सूचना के अधिकार की ज़बरदस्त वकालत की गई थी. विभिन्न उच्च न्यायालयों के तमाम फैसलों को छोड़ दिया जाए तो सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम तीन फैसले सूचना के अधिकार की वकालत ज़रूर करते हैं. यह फैसले क्रमश: 1975, 1981-82 और 1986 के हैं. (नीचे इसका विवरण देख सकते हैं.)

---

[5] रिपोर्ट ऑफ द प्रेस कमीशन, भाग –एक, पैरा -1048, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन, गवर्मेन्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1954

[6] Angela Wadia, Global Sourcebook on Right to Information; page-118, Kanishka Publishers, 2006

[7] डॉ. शालू निगम, सूचना का अधिकार : कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू, वी द पीपुल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-40, 2007

[8] डॉ. शालू निगम, सूचना का अधिकार : कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू, वी द पीपुल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-41, 2007

[9] Angela Wadia, Global Sourcebook on Right to Information, page-131, 146, 195 and 226, Kanishka Publishers, 2006

इस के अलावा ''अन्तर्राष्ट्रीय बंधन' भी सूचना के अधिकार को देश में लागू करने को मजबूर किया . भारत से पहले विश्व के 54 देश में पारदर्शिता व सरकार की जवाबदेही के लिए सूचना के अधिकार क़ानून को लागू कर चुके थे .

(अन्तर्राष्ट्रीय बंधन: भारत ने मानव अधिकारों से संबंधित सार्वभौमिक घोषणा यू॰डी॰एच॰आर॰ (UDHR) 1948 की संधि पर हस्ताक्षर किया है तथा आई॰सी॰सी॰पी॰आर॰ (ICCPR) 1966 का अनुच्छेद 19 भी 'सूचना के अधिकार'से संबंधित है इन संधियों द्वारा बंधित होने के कारण 'सूचना का अधिकार' लागू करना आवश्यक बन जाता है. संविधान के अनुच्छेद 51 (ग) में भी अन्तर्राष्ट्रीय और संधि-बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने की बात कही गई है.)[10]

दरअसल, 1977 के बाद भारत में लोकतंत्र को लेकर हर स्तर पर नए सिरे से सोचने का सिलसिला शुरू हुआ. (क्योंकि 1975 में आपातकाल की घोषणा के बाद पहली बार स्वीकार किया गया कि लोकतंत्र को हमेशा सुरक्षित रहने वाली संस्था नहीं माना जा सकता. जनता द्वारा चुनी गई सरकार भी उसी संविधान की दुहाई देकर लोकतंत्र का गला घोंट सकती है, जिस संविधान पर हर भारतीय को गर्व है.) तंत्र की पारदर्शिता और मतदाता के प्रति सरकार को जवाबदेही जैसे मामले केन्द्रीय चिंता का विषय बने. सूचना के अधिकार के साथ भी ऐसा ही हुआ. वैसे 1977 के पहले भी कुछ ग़ैर सरकारी एवं पत्रकार संगठनों ने इस अधिकार की मांग उठाई थी लेकिन सरकारी स्तर पर 1977 के बाद ही यह संभव हो पाया. तंत्र को पारदर्शी बनाने का सवाल अब सरकार और उसके द्वारा समय-समय पर गठित की गई संस्थाओं के एजेंडे में भी प्रमुखता से दिखाई पड़ने लगा.[11]

उस समय सत्ता पर काबिज़ जनता पार्टी की सरकार ने सबसे पहले सूचना के अधिकार के महत्व को जाना और आवश्यकता महसूस की. लेकिन इस पर पार्टी की तरफ से कोई पहल होती कि उससे पहले ही यह सरकार गिर गई.

1978 में द्वितीय प्रेस आयोग का गठन हुआ. जस्टिस पी॰ के॰ गोस्वामी इसके अध्यक्ष बनाए गए. परन्तु पुनः जब 1980 में श्रीमती इंदिरा गांधी की वापसी हुई, तो परंपरा के अनुसार जस्टिस गोस्वामी ने इस्तीफा दे दिया. अब जस्टिस के॰ के॰ मैथ्यू इस आयोग के अध्यक्ष बने. आयोग की एक रिपोर्ट 1982 में प्रकाशित हुई, जिसमें सूचना के अधिकार की तो नहीं, लेकिन सरकारी गोपनीयता कानून (1923) की सर्वाधिक विवादास्पद धारा-5 में संशोधन की ज़ोरदार वकालत की गई.

[10] डॉ. शालू निगम, सूचना का अधिकार : कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू, वी द पीपुल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-38, 2007

[11] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अध्याय-5, पृष्ठ-60, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

रिपोर्ट में कहा गया था -' धारा-5 को निरस्त करके इसकी जगह पर राष्ट्रीय सुरक्षा और राज्य के अन्य महत्वपूर्ण हितों और राज्य के कार्य-व्यापार की जानकारी के जनता के अधिकार की सर्वोच्च आवश्यकताओं के अनुरूप कोई प्रावधान किए जाएं. धारा-5 के सूचनाओं के उन प्रकारों तक सीमित किया जाना चाहिए, जिनके प्रकटीकरण से देश की सुरक्षा प्रभावित होती हो. ऐसा करने से कार्यपालिका के भीतर यह वातावरण बनेगा कि कानून उसकी हर चीज़ को गोपनीय करार देने की प्रवृत्ति का बचाव नहीं करेगा.'[12]

इस बीच भारत के विभिन्न न्यायालयों ने भी कई महत्वपूर्ण फैसले दिए, जिसमें सूचना के अधिकार की ज़बरदस्त वकालत की गई थी. 1975 में राजनारायण बनाम उत्तर प्रदेश[13] मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद-19 में वर्णित सूचना के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया. इस मुक़दमे में एक न्यायाधीश जस्टिस के.के. मैथ्यू ने अपने फैसले में कहा था-

'सरकार या उसके किसी अधिकारी द्वारा सार्वजनिक ढंग से किए गए किसी भी सार्वजनिक कार्य के बारे में जानने का अधिकार देश के हर व्यक्ति को है. ऐसे कार्य की बारीक से बारीक चीज़ों को जानने का उसे हक़ है. जानने का अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की अवधारणा से ही निकला है. यह सही है कि यह अधिकार अमूर्त नहीं है और परिस्थितियों के अनुसार इसकी अनेक सीमाएं भी हैं, लेकिन जो सूचनाएं देश की सुरक्षा को क्षतिग्रस्त न करती हों, उन्हें प्राप्त करने का अधिकार हर व्यक्ति को है. गोपनीयता का आडंबर खड़ा करके सरकारी कामकाज की सामान्य सूचनाओं को गुप्त रखना जनहित के विरुद्ध होगा. सूचनाओं को गोपनीय रखने को कभी-कभार ही जायज़ ठहराया जा सकता है. इसकी ज़रूरत भी यदा-कदा ही पड़ती है. आमतौर पर ऐसी सूचनाएं अपने राजनीतिक, दलगत एवं निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए गोपनीय रखी जाती हैं. नौकरशाहों की आदत भी इसका एक पक्ष है. इसलिए अत्याचार एवं भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिए ज़रूरी है कि सरकारी अधिकारियों को उनके द्वारा किये कार्यों के लिए जवाबदेह बनाया जाए.'[14]

संभवतः हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी अदालत का यह पहला फैसला था, जिसमें सूचना के अधिकार की मांग को जायज़ ठहराया गया था. 1981-82 के सर्वोच्च न्यायालय के एक-दूसरे फैसले को मील का पत्थर माना जा सकता है. यह फैसला एस॰पी॰ गुप्ता बनाम भारत सरकार[15] के मुक़दमे में सर्वोच्च न्यायालय ने दिया था.

---

[12] प्रो॰ (डॉ॰) नंदकिशोर त्रिखा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रेस विधि, पृष्ठ-34, 1998

[13] (1975) चार, सुप्रीम कोर्ट कलेक्शन, 428

[14] उत्तर प्रदेश बनाम राजनारायण फैसले में निर्णय

[15] इसे 'जजेज केस' के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें कई न्यायाधीशों के स्थानांतरण एवं नियुक्तियों का मामला उठा था। सात न्यायाधीशों की एक संविधान पीठ ने इस मामले की सुनवाई की थी। इस पीठ के सदस्य थे न्यायमूर्ति पी॰एन॰ भगवती, ए॰सी॰ गुप्ता, एस॰ मुर्तज़ा फज़ल अली, वी॰डी॰ तुल्जापुरकर, डी॰ए॰ देसाई, आर॰एस॰ पाठक और ई॰एस॰ वेंकटरमैया। (ए॰आई॰आर॰ 1982, सुप्रीम कोर्ट, 149)

केन्द्रीय विधि मंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा पटना-दिल्ली उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के बीच परस्पर हुए पत्र व्यवहारों को सार्वजनिक करने का निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया. इस फैसले में जस्टिस पी॰एन॰ भगवती द्वारा कहे गये एक-एक शब्द का विशेष महत्व था. न्यायमूर्ति भगवती ने कहा-

'बिना जवाबदेही के कोई लोकतांत्रिक सरकार ज़िन्दा नहीं रह सकती. सरकार की कार्य प्रणाली की जानकारी लोगों को मुहैय्या कराना इस जवाबदेही का मूलमंत्र है. खुले समाज की एक नयी लोकतांत्रिक संस्कृति होती है जिसे आप अधिकांश उदारवादी लोकतांत्रिक देश अपना रहे हैं. हमारा समाज इसका अपवाद नहीं हो सकता. पारदर्शी सरकार की अवधारणा का सीधा रिश्ता जानने के अधिकार से है और यह अधिकार हमारे संविधान के मूल अधिकारों में शामिल अनुच्छेद-19(1-क) में वर्णित विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है. इसलिए सरकारी सूचनाओं को सार्वजनिक करना निश्चित रूप से एक सामान्य नियम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए. गोपनीयता महज़ इसका अपवाद हो सकती है. गोपनीयता को सिर्फ वहीं जायज़ माना जाना चाहिए जहां ऐसा करना जनहित में हो.'[16]

जस्टिस भगवती ने अपने इस फैसले में यह भी कहा कि 'पांच साल में मात्र एक बार मतदान कर सरकार के क्रियाकलापों के प्रति उदासीन हो जाने से 'लोकतंत्र' नाम की संस्था ही समाप्त हो सकती है. इसलिए ज़रूरी है कि सरकार अपने काम-काज की सूचनाएं जनता तक पहुंचाए, ताकि लोकतंत्र में 'निगरानी रखने और संतुलन बरकरार रखने' की एक प्रणाली विकसित हो सके.'

1986 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये फैसले का भी काफी महत्व है. श्रीराम फूड्स एंड फर्टिलाइजर नामक कम्पनी के ख़िलाफ जब ख़तरनाक गैस रिसाव एवं पर्यावरण प्रदूषण का मामला उठा, तब एम॰सी॰ मेहता बनाम भारत सरकार मुक़दमे में सर्वोच्च न्यायालय को अपनी विवशता ज़ाहिर करते हुए सूचना संबंधी कुछ व्यावहारिक दिक्कतों पर चर्चा करनी पड़ी. अपने लंबे फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा-

'पिछले कुछ वर्षों से न्यायालय के समक्ष आने वाले पर्यावरणीय प्रदूषण एवं पारिस्थितिकी विनाश संबंधी मामलों में लगातार वृद्धि हो रही है. लाखों ग़रीब लोगों की जान-माल की चिंता व्यक्त करने वाले ये मामले जनहित याचिका के ज़रिये हमारे समक्ष आ रहे हैं. इन मामलों पर निर्णय देने के लिए कुछ विशेष तरह की सूचनाओं के साथ-साथ उच्च स्तरीय वैज्ञानिक ज्ञान की ज़रूरत महसूस की जा रही है. हमें कई विशेषज्ञों से सम्पर्क करना पड़ रहा है. इस मामले की सुनवाई करते समय हमें विशेषज्ञों की एक समिति भी बनानी पड़ी, फिर भी विशेषज्ञों की निष्पक्ष राय की समस्या मौजूद रही. आज की तारीख़ तक हमारे पास ऐसी कोई संस्था नहीं,

[16] एस॰पी॰ गुप्ता बनाम भारत सरकार, सप्लिमेंटरी, एस॰सी॰सी॰ 87, 1981

जिससे हम जब चाहें तब उचित एवं निष्पक्ष राय प्राप्त कर सकें. हमें ऐसी विशेषज्ञों के एक समूह की सख़्त ज़रूरत है. हमारा सुझाव है कि भारत सरकार एक 'इकोलॉजिकल साइंस रिसर्च ग्रुप' का गठन करे जिसमें पेशेवर, योग्य एवं पूर्णरूपेण दक्ष व्यक्ति रहें और हमें निष्पक्ष एवं स्वतंत्र राय दे सकें विज्ञान और तकनीकी के विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को लेकर गठित किया गया यह समूह न्यायालय के लिए 'सूचना बैंक' का कार्य करेगा. ऐसा नहीं होने पर न्यायालय सही निर्णय दे पाने में अक्षम साबित होंगे.'[17]

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के इन निर्णयों के बाद सूचना के अधिकार की बहस एक बार फिर तेज़ हुई. इसी का नतीजा था कि उत्तर प्रदेश सरकार ने 1989 में ही 'पंचायती राज एक्ट' में संशोधन करके पांच रुपये की फीस जमा करवाने पर जनता को काग़ज़ात देखने अथवा लेने की छूट दे दी थी.[18]

1989 में लोकसभा चुनाव हुए. विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा का गठन हुआ. मोर्चा ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में वायदा किया कि सत्ता में आने पर वह जनता के सूचना के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए संविधान में समुचित संशोधन करेगा. इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए सरकारी गोपनीयता कानून (1923) को भी समुचित तरीके से संशोधित करेगा.[19] भारतीय जनता पार्टी एवं अन्य वामपंथी दलों ने भी अपने-अपने घोषणा पत्रों में ऐसी वचनबद्धताएं प्रकट कीं.

भाजपा और वाममोर्चे के समर्थन से केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी. वी०पी० सिंह देश के प्रधानमंत्री बने. राष्ट्र के नाम प्रसारित अपने पहले संदेश में उन्होंने राष्ट्रीय मोर्चा के घोषणा पत्र को लागू करने की वचनबद्धता दुहरायी. इसका विस्तार करते हुए उन्होंने सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम बनाने के निश्चय की घोषणा भी की.

अपने इस पहले संदेश में वी०पी० सिंह ने कहा था - 'हम सूचना का अधिकार देंगे. सरकार के क्रिया-कलापों में जितना खुलापन रहेगा, ग़लत चीज़ें उतनी ही कम होंगी. इसके लिए हम सरकारी गोपनीयता कानून में संशोधन करेंगे और सूचना के अधिकार को संविधान का अंग बनाएंगे.'[20]

इस संदेश के कुछ ही दिनों बाद दिसम्बर 1989 में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश वी०आर० कृष्ण अय्यर ने प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी. इस चिट्ठी में उन्होंने तंत्र को पारदर्शी बनाने के लिए

[17] एम०सी० मेहता बनाम भारत सरकार, (1986) 2 एस०सी०सी० 176, 201-202

[18] मैग्सेसे अवार्ड सम्मानित आरटीआई कार्यकर्ता संदीप पाण्डेय से बातचीत के आधार पर

[19] 1989 में जारी राष्ट्रीय मोर्चा का घोषणा-पत्र

[20] वी०आर० कृष्ण अय्यर, फ्रीडम ऑफ इन्फार्मेशन, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, पृष्ठ-XXIII, 1990

कानून बनाने के उनके वादे को याद दिलाया था. 2 जनवरी 1990 को वी॰पी॰ सिंह ने उन्हें इस ख़त का जवाब देते हुए अपने वादे पर कायम रहने का आश्वासन भी दिया.[21]

सूचना प्रसारण मंत्रियों के 20वें सम्मेलन में उद्घाटन भाषण देते हुए भी वी॰पी॰ सिंह ने सूचना के अधिकार को संविधान के मूल अधिकारों में शामिल करने की अपनी इच्छा व्यक्त की.[22] यही नहीं, 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनने के बाद राष्ट्रपति आर॰ वेंकटरमण ने भी संसद के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित करते हुए सरकारी गोपनीयता कानून में संशोधन एवं यथासंभव सूचना का अधिकार कानून निर्मित करने की बात कही.

वी॰पी॰ सिंह के प्रधानमंत्रित्व काल में इस संदर्भ में ठोस पहल भी हुई. 1 मार्च 1990 को केन्द्रीय गृहसचिव ने एक प्रारंभिक नोट जारी किया, जिसमें सरकारी गोपनीयता कानून में प्रस्तावित संशोधनों का उल्लेख किया गया था.

27 मार्च 1990 को मीडिया फाउण्डेशन के वार्षिक लेक्चर में पूर्व अटॉर्नी जनरल श्री सोली सोराबजी ने कहा – 'सूचना के अधिकार यानी जानने के अधिकार का औचित्य क्या है? इसका उत्तर संभवतः प्रजातांत्रिक प्रणाली की मूल परिकल्पना में ही निहित है....'[23]

2 मई 1990 को हिन्दुस्तान टाइम्स में लिखे एक महत्वपूर्ण लेख में सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश जस्टिस एच.आर. खन्ना लिखते हैं –'जानकारी का अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निहित है और उस मूल अधिकार के अंतर्गत आता है, जिसकी संविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) में गारंटी दी गई है...'[24]

इसी बीच भारतीय प्रेस परिषद भी दोबारा सक्रिय हुई. सरकारी गोपनीयता कानून (1923) में संशोधन करने या उसमें आमूलचूल परिवर्तन करने का ही नहीं, बल्कि उसे पूरी तरह रद्द करने का सुझाव दिया गया. इसके साथ ही परिषद ने सूचना की स्वतंत्रता देने वाले कानून निर्माण के संदर्भ में भी अपनी राय व्यक्त की. लंबे विचार-विमर्श के बाद 13 जुलाई 1990 को 10 मांगों पर आधारित अपनी सिफारिशें पेश की. प्रेस परिषद की ये सिफारिशें कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण थीं. भारत में पहली बार किसी संस्था ने सूचना का अधिकार और सरकारी गोपनीयता कानून (1923) पर इतने विस्तार के साथ चर्चा कर उसे एक दस्तावेज़ की शक्ल प्रदान की थी. पर कोई विशेष फायदा नहीं हो सका, क्योंकि वी॰पी॰ सिंह की सरकार रह नहीं पाई.

---

[21] वी॰आर॰ कृष्ण अय्यर, फ्रीडम ऑफ इन्फार्मेशन, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, पृष्ठ-XXVI, 1990

[22] 18 अप्रैल 1990 को नई दिल्ली में सूचना प्रसारण मंत्रियों के बीसवें सम्मेलन का उद्घाटन भाषण

[23] न्यायमूर्ति श्री रणजीत सिंह सरकारिया (अध्यक्ष –भारतीय प्रेस परिषद), सूचना की स्वतंत्रता और शासकिय गोपनीयता, पृष्ठ संख्या -37, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल, 1992

[24] न्यायमूर्ति श्री रणजीत सिंह सरकारिया (अध्यक्ष –भारतीय प्रेस परिषद), सूचना की स्वतंत्रता और शासकिय गोपनीयता पृष्ठ संख्या -38, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल, 1992

564

इधर कुछ जन संगठन जगह-जगह पर आम लोगों की सरकारी सूचनाएं मांगने के लिए प्रेरित कर एक बड़े आन्दोलन के लिए तैयार कर रहे थे. यह आन्दोलन राजस्थान के एक छोटे से गांव से शुरू हुआ, जहां आम जनता सरकारी दस्तावेज़ों जैसे कि मस्टर रोल की कॉपी, सड़कों, नहरों, स्कूल, बिल्डिंगों और अन्य निर्माण कार्यों के ठेके की कॉपी आदि की मांग कर रही थीं. आम जनता को एकजुट करने के उद्देश्य से वर्ष 1990 में प्रमुखतः अरुणा राय, निखिल डे और शंकर सिंह ने 'मज़दूर-किसान शक्ति संगठन'(MKSS) की नींव रखी. इसके कार्यकर्ताओं ने पाया कि स्थानीय प्रशासन और ठेकेदार ग्रामीण जनता का शोषण कर रहे हैं. उन्हें ''ग़रीबी हटाओ योजना" के तहत दिए जाने वाली राशि से वंचित किया जा रहा है. और तो और उन्हें न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं दिया जा रहा था. लोग इस भ्रष्टाचार से भली-भांति परिचित थे. लेकिन सरकारी काग़ज़ों को हासिल किए बिना इन सारी धांधलियों को उजागर नहीं किया जा सकता था. बस यहीं से "हम जानेंगे, हम जियेंगे" और ''हमारा पैसा-हमारा हिसाब" यानी सूचना के अधिकार की मांग उठने लगी.

धरना, प्रदर्शन, रैलियों, जन-सुनवाइयों तथा संघर्षों का दौर चला. इसी संघर्ष के कारण अप्रैल 1996 में राजस्थान के मुख्यमंत्री ने सूचना के अधिकार को लागू करने के लिए क़ानून बनाने का वादा किया . 1990 से 2002 तक चले इस अहिंसात्मक आन्दोलन से मज़दूर किसान शक्ति संगठन' ने सरकारी अधिकारियों पर दबाव डाला कि वे अपने वादे को पूरा करें और सूचना के अधिकार कानून को लागू करे . उनके इस काम से पूरा देश प्रभावित हुआ और इस आन्दोलन को राष्ट्रीय स्तर पर चलाया गया.

राजस्थान में हुए इसी संघर्ष ने 1997 में National Campaign for people's Right to Information को जन्म दिया. अन्य कई राज्यों में भी इस आन्दोलन के कारण सूचना के अधिकार की मांग उठी और कुछ राज्यों में राज्य स्तर पर सूचना के अधिकार से संबंधित कानून लागू भी किए गए. इस प्रकार इस आन्दोलन द्वारा केन्द्र स्तर पर भी इस कानून को बनाने की प्रक्रिया स्थापित की गई.

'राष्ट्रीय स्तर पर सूचना संबंधी कानून बनाने के लिए कंज्यूमर एजुकेशन व रिसर्च काउंसिल, अहमदाबाद ने एक ड्राफ्ट कानून बनाया. 1996 में प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया ने भी एक ड्राफ्ट मॉडल कानून बनाकर भारत सरकार के समक्ष रखा. इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेन्ट, हैदराबाद में भी एक एक बिल 1997 में पेश किया. 2 जनवरी 1997 को भारत सरकार के कार्मिक विभाग ने एक कार्य समिति का गठन किया, जिसे शौरी कमिटी के नाम से जाना जाता है. इस समिति ने भी एक ड्राफ्ट बिल 24 मई 1997 को तैयार किया.'[25] 2002 में Freedom of Information Act पास किया गया. लेकिन यह बिल भी पारदर्शी प्रशासन के नाम पर महज़ एक ख़ानापूर्ति भर बनकर रह गया.

---

[25] डॉ. शालू निगम, सूचना का अधिकार: कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू वी द पीपुल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-56, 2007

इधर 1996 में तमिलनाडु के मुख्यमंत्री करुणानिधि ने एक दिन अचानक तत्कालीन कानून मंत्री अलादी अरुणा को सूचना के अधिकार संबंधी विधेयक का प्रारूप तैयार करने की ज़िम्मेदारी दी. अलादी अरुणा ने 1996 में प्रेस परिषद द्वारा तैयार किए गए विधेयक को आधार बनाकर 'तमिलनाडु सूचना का अधिकार विधेयक 1997' तैयार किया. इस विधेयक को 17 अप्रैल 1997 को वहां की विधानसभा के बजट सत्र में पारित दिया गया और मई 1997 से पूरे तमिलनाडु में लागू हो गया. इस प्रकार तमिलनाडु सूचना का अधिकार देने वाला भारत का पहला राज्य बन गया.[26]

गोवा में भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को ध्यान में रखते हुए एक झटके में तमिलनाडु में जारी सूचना के अधिकार में कुछ संशोधन कर विधेयक तैयार कर लिया गया. 1997 के मानसून सत्र में 14 जुलाई को कुछ विरोध के बीच इस विधेयक को पारित कर दिया गया. इस तरह 29 अक्तूबर 1997 को यह क़ानून गोवा में भी लागू हो गया.[27]

राजस्थान में एम॰के॰एस॰एस॰ के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन से दबाव में आकर मुख्यमंत्री भैरोसिंह शेखावत को 5 अप्रैल 1995 को विधानसभा में कहना पड़ा कि जनता को सूचना का अधिकार देंगे. ऐसे में सूचना के अधिकार को अमल में लाने के लिए एम॰के॰एस॰एस॰ ने अपने धरनों, सभाओं, प्रदर्शनों, गोष्ठियों और सम्मेलनों का सिलसिला और तेज़ कर दिया. इसी के मद्देनज़र मुख्यमंत्री भैरोसिंह शेखावत ने पंचायत में पारदर्शिता लाने के लिए ठोस उपाय सुझाने हेतु एक समिति का गठन कर दिया. 17 जून 1996 को सरकारी आदेश (क्रमांकः प॰ 6-30 प्र-सु॰/अनु-3/96) के ज़रिये एक छह सदस्यीय समिति गठित की गयी. 29 अगस्त 1996 को इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की. 30 दिसम्बर 1996 को एक सरकारी आदेश के ज़रिये पंचायत और पंचायत समिति स्तर पर सभी सरकारी रिकार्ड्स देखने और उनकी फोटो कॉपी प्राप्त करने का प्रावधान किया गया. लेकिन एम॰के॰एस॰एस॰ कार्यकर्ताओं ने अपनी लड़ाई जारी रखी और अंततः एक मई 2001 में उन्होंने यह जंग जीत ली.[28]

1988 में कर्नाटक की विधानसभा में भी 'कर्नाटक फ्रीडम ऑफ प्रेस बिल'पेश किया गया. इस विधेयक पर काफी विवाद हुआ. पुनः 10 दिसम्बर 2000 को वहां के गवर्नर द्वारा सहमति प्रदान की गई. और इसे 13 दिसम्बर 2000 को कर्नाटक राज्य सरकार के गैजेट में प्रकाशित कर पूरे राज्य में लागू कर दिया गया.[29]

[26] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अध्याय-6, पृष्ठ-85, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

[27] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अध्याय-6, पृष्ठ-86, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

[28] स्कूल फॉर डेमोक्रेसी द्वारा प्रकाशित पत्रिका डायमंड इंडिया के फरवरी-मार्च, 2011 (संयुक्तांक) 'सूचना का अधिकार, एक सिंहावलोकन' के अध्ययन के आधार पर

[29] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अध्याय-6, पृष्ठ-73, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

566

देश की राजधानी होने के कारण दिल्ली में भी मई 2001 में सूचना का अधिकार विधेयक पारित हुआ और 2 अक्तूबर 2001 को इसे पूरे दिल्ली में लागू कर दिया गया.[30]

पूर्वोत्तर राज्यों में असम ही एकमात्र ऐसा राज्य था, जिसने सूचना के अधिकार संबंधी कानून को अधिनियमित किया. दरअसल, 'असम सूचना अधिकार अधिनियम-2002' बगैर किसी बहस के चुपचाप लाया गया.[31]

मई 1998 में मध्य प्रदेश भी सूचना का अधिकार विधेयक पारित करने में सफल हुआ. मध्य प्रदेश में इस क़ानून को पारित कराने में तत्कालीन मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह की भूमिका सबसे अहम रही . दिग्विजय सिंह की पहल पर मध्य प्रदेश सरकार ने 1996 में ही सूचना का अधिकार विधेयक भी तैयार कर लिया था. इस विधेयक को विधानसभा के शीतकालीन सत्र (1996) में ही लाने का वादा किया गया था, लेकिन इसे सदन में नहीं रखा जा सका. विधानसभा में पेश करने से पहले दिग्विजय सिंह ने इसे अपने मंत्रीमंडल के समक्ष रख ना उचित समझा. 17 मार्च 1997 को यह मंत्रीमंडल रखा गया. कई मंत्रियों के ज़बरदस्त विरोध के कारण विधेयक वापस ले लिया गया, लेकिन दिग्विजय सिंह पीछे नहीं हटे.

उनके प्रयास जारी रहें और अंततः 1998 में मध्य प्रदेश विधानसभा ने इस विधेयक को पारित कर आश्चर्यजनक रूप से राज्यपाल के बदले राष्ट्रपति के पास मंजूरी के लिए भेज दिया. लेकिन राष्ट्रपति के पास से यह विधेयक कभी वापस नहीं लौटा. पांच साल बाद 2003 में मध्य प्रदेश विधानसभा ने दोबारा नया विधेयक पारित करके क़ानून लागू किया.[32]

11 दिसम्बर 2000 को महाराष्ट्र में भी सूचना का अधिकार विधेयक पारित हुआ. हालांकि महत्वपूर्ण सूचनाओं पर पाबंदी के कारण यह विधेयक बेहद कमज़ोर था. सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हज़ारे ने राज्य में ज़ोरदार आन्दोलन चलाकर एक बेहतर कानून बनाने का दबाव डाला.

नया विधेयक बनाने के लिए 10 सितम्बर 2001 को महाराष्ट्र सरकार ने एक समिति गठित की. अप्रैल 2002 में विधानसभा में नया विधेयक आया. साथ ही, 23 सितम्बर 2002 को एक अध्यादेश लाया गया. मार्च 2003 में महाराष्ट्र विधानसभा के दोनों सदनों ने विधेयक को पारित कर दिया. 10 अगस्त 2003 को राष्ट्रपति की भी मंजूरी मिल गई. इसे अध्यादेश की तिथि 23 सितम्बर 2002 से लागू माना गया.[33]

---

[30] Angela Wadia, Global Sourcebook on Right to Information, page-234, Kanishka Publishers, 2006

[31] डॉ. शालू निगम, सूचना का अधिकार: कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू, वी द पीपुल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-59, 2007

[32] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अध्याय-6, पृष्ठ-81, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

[33] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, अध्याय-6, पृष्ठ-89, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

567

इसी बीच मई 2004 में केंद्र में कांग्रेस और वामपंथियों के गठजोड़ की संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार सत्ता में आई. न्यूनतम साझा कार्यक्रम के माध्यम से संप्रग सरकार ने एक स्वच्छ और पारदर्शी प्रशासन के लिए प्रतिबद्ध रहने का वादा किया. अपने वादों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए सरकार ने कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति (एनएसी) का गठन किया.

सरकार ने राष्ट्रीय सलाहकार समिति और अन्य सामाजिक संगठनों की मदद से सूचना का अधिकार कानून का मसौदा तैयार किया, जिसे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के पास भेजा गया .

23 दिसम्बर 2004 को संप्रग सरकार ने इसे संसद के समक्ष प्रस्तुत किया. 11 मई, 2005 को लोकसभा में और 12 मई, 2005 को राज्यसभा में एक लंबी बहस के बाद 146 संसोधनों के साथ इसे दुबारा लाया गया, जो भारत के राजपत्र में 'सूचना का अधिकार अधिनियम-2005' (2005 का अधिनियम संख्यांक 22) 15 जून 2005 को प्रकाशित किया गया और 120 दिनों के बाद अर्थात 12 अक्तूबर 2005 को इसे जम्मू व कश्मीर छोड़कर पूरे भारत वर्ष में लागू कर दिया गया.

इस तरह लंबे संघर्षों, अभियानों, व्यकितगत एवं सामूहिक प्रयासों और कानूनी दांवपेंचो से भारत की जनता को जानने का हक़ मिल सका. यह जानने का हक़ ही भारतीय लोकतंत्र के लिए ऑक्सीजन का काम कर उसमें नई जान फूंक रहा है.

Review of Literature (साहित्यावलोकन)

'स्टेट' देश के विभिन्न संस्थानों से मिलकर बनता है और इन संस्थानों में लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाने से ही 'स्टेट' की भूमिका सुनिश्चित की जा सकती है. इन संस्थानों में काम करने वाले यदि पारदर्शी व जवाबदेह न हो तो लोकतंत्र मज़बूत नहीं हो सकता. जनता का 'स्टेट' व लोकतंत्र के प्रति विश्वास घटने लगता है. ऐसे में अब प्रश्न उठता है कि 'स्टेट' में पारदर्शिता कैसे लाई जाए ? इन संस्थानों को जवाबदेह कैसे बनाया जाए? तो इसका एकमात्र उत्तर होगा कि इन संस्थानों से संबंधित समस्त सूचनाओं को आम लोगों तक पहुंचा दिया जाए सिस्टम में खूद बखूद पारदर्शिता व जवाबदेही आ जाएगी. सूचना का अधिकार लोकतंत्र की आत्मा से निकली इसी पारदर्शिता व जवाबदेही के विचार से प्रेरित है.

भारत में 'सूचना का अधिकार'(आरटीआई) कानून का लागू होना एक ऐतिहासिक उपलब्धि है. इसने इस देश के नागरिकों को पहली बार सही अर्थों में लोकतंत्र में जीने का एहसास दिलाया है. अभी तक तो भारत के

568

नागरिकों को मतदान का अधिकार था, किन्तु अब यह भी जान सकते हैं कि उनके द्वारा चुनी गई सरकार क्या कर रही है, और उनके पैसे कहां खर्च हो रहे हैं? अभी तक हमारे लोकतंत्र के इतिहास में अधिकारी व नेतागण मनमाने तरीकों से अपना निर्णय लेते आ रहे थे. कई निर्णय राजनैतिक दबाव के चलते या भ्रष्टाचार की वजह से लिए जाते हैं. ऐसी स्थिति में इस कानून द्वारा इस तरह की अनियमितताओं पर अंकुश लगना आरंभ हो गया है. और भविष्य में भी हर तरह की अनियमितताओं पर अंकुश लगने की उम्मीद फिलहाल हर भारतीय को दिखाई दे रही है.

यदि देखा जाए तो आज बेहतर जीवन की बातें करना फैशन ज़रुर है, वरना जीने का अधिकार ही आज सबसे बड़ा सपना है. जब जीने का अधिकार होगा तभी तो बेहतर और गरिमापूर्ण जीवन जीने की बात पैदा होगी. सूचना के इस अधिकार को हम जीने का अधिकार इसलिए कह सकते हैं, क्योंकि यह आम लोगों को मदद पहुंचाने में सक्षम है, भ्रष्टाचार को रोक सकता है, लोगों को अधिकार संपन्न बनाता है और संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों की प्राप्ति में भी सहायक है. क्योंकि सूचना के इस अधिकार के साथ अभिव्यक्ति, भोजन, काम, न्याय पाने, शिक्षा, स्वास्थ्य व अन्य सभी अधिकार जुड़े हुए हैं. झुग्गी-झोंपड़ी से लेकर बड़े बांधों तक से विस्थापित लोगों, दिल्ली का दिहाड़ी मज़दूर नन्नू हो , बिहार का रिक्शाचालक 'मज़लूम' या फिर जेल की काल कोठरी में बैठा कोई क़ैदी.... सबको एक सम्मानपूर्ण ज़िंदगी देने का सपना इस अधिकार के उपयोग से साकार हो सकता है.

भारत में सूचना का अधिकार यानी आर.टी.आई. की दुनिया अभी नई नई है. इसका इतिहास कोई अधिक पुराना नहीं है. शायद यही कारण है कि यदि मूल एक्ट की कॉपी को दरकिनार कर दिया जाए तो इस पर सही पुस्तकों का काफी अभाव है. विशेष तौर हिन्दी भाषा में इस पर काम न के बराबर ही हुआ है. इसके बावजूद इस विषय पर 14-15 पुस्तकें हासिल करने में हम कामयाब रहे. लेकिन हमारे शोध विषय से संबंधित विषय-सामग्री की खोज करने पर पता चला कि इनके बारे में भारत में अभी तक कोई कार्य नहीं हुआ है.

पुस्तकों की चर्चा करें तो लेखक अरुण पाण्डेय अपनी पुस्तक "हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार"[34] में लिखते हैं कि "वर्ष 1977 आजादी की दूसरी और लोकतंत्र की पहली लड़ाई का प्रतीक था. दरअसल, 1977 के बाद लोकतंत्र को लेकर हर स्तर पर नए सिरे से सोचने का सिलसिला प्रारंभ हुआ तंत्र की पारदर्शिता और मतदाता के प्रति सरकार की जवाबदेही जैसे मामले केन्द्रीय चिंता का विषय बनें. सूचना के अधिकार के साथ भी ऐसा ही हुआ. 1977 के पहले गैरसरकारी संगठनों और कुछ पत्रकार संगठनों ने इस अधिकार की मांग ज़रुर

[34] अरूण पांडेय, हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

उठाई थी, लेकिन सरकारी स्तर पर ऐसी मांगे 1977 के बाद ही उठनी शुरू हुईं. जनता पार्टी के घोषणापत्र और उसकी सरकार द्वारा ली गई पहल-क़दमियों का कोई ठोस नतीजा तो नहीं निकल सका, पर एक बहस अवश्य शुरू हुई. तंत्र को पारदर्शी बनाने का सवाल अब सरकार और उसके द्वारा समय-समय पर गठित की गई संस्थाओं के एजेंडे में प्रमुखता से दिखाई पड़ने लगा. भारत में सूचना का अधिकार देने की दृष्टि से द्वितीय प्रेस आयोग की सिफारिशों को प्रस्थान-बिन्दु माना जा सकता है." अरूण पांडेय की इस पुस्तक में लोकतंत्र विभिन्न अवधारणाओं की सैद्धांतिक व्याख्या है. जानने के अधिकार की ज़रूरत और उसके मार्ग में आने वाले अवरोधों का विस्तृत अध्ययन उपलब्ध है. 'सरकारी गोपनीयता कानून' के इतिहास के साथ-साथ पारदर्शिता के लिए देश में चले तमाम आन्दोलनों का भी ज़िक्र है.

वहीं मैग्सेसे अवार्ड से सम्मानित आर.टी.आई. एक्टिविस्ट व दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवा ल और प्रभात खबर इंस्टीट्यूट (रांची) के विष्णु राजगढ़िया अपनी पुस्तक "सूचना का अधिकार –नया लोकतंत्र, नई पत्रकारिता"[35] में लिखते हैं – "पूरी दुनिया में सूचना की आज़ादी के आंदोलनों ने भारत में भी इसकी ज़रूरत प्रमाणित की थी. हालांकि यह माना जाता रहा है कि भारत के संविधान की धारा -19(1)(क) में जानने का अधिकार का अधिकार भी निहित है. इसमें कहा गया है कि सभी नागरिकों को वाक्-स्वातंत्र्य एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार होगा. इस प्रावधान की व्यापक व्याख्या की गई है. इंडियन एक्सप्रेस न्यूज़पेपर्स बनाम भारत संघ (1985, एसीसी 641) मामले में उच्चतम न्यायलय ने कहा कि नागरिकों को सरकार के संचालन संबंधी सूचनाओं के विषय में जानने का अधिकार है" यह पुस्तक पत्रकारिता को ध्यान में रखते हुए लिखी गई है. साथ में सूचना का अधिकार क्या और कैसे है, इसका भी ज़िक्र है.

कबीर संस्था की एक पुस्तक "सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 –कैसे करें इस्तेमाल"[36] में लिखा गया है "भारत एक लोकतांत्रिक देश है. लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम आदमी ही देश का असली मालिक होता है. इसलिए मालिक होने के नाते जनता को यह जानने का हक़ है कि जो सरकार उसकी सेवा के लिए बनाई गई है, वह क्या, कहां और कैसे कर रही है. इसके साथ ही हर नागरिक इस सरकार को चलाने के लिए टैक्स देता है, इसलिए भी नागरिकों को यह जानने का हक़ है कि उनका पैसा कहां खर्च किया जा रहा है. जनता का यह जानने का अधिकार ही सूचना का अधिकार है." (यह पुस्तक भी आरटीआई के सफल इस्तेमाल को ध्यान में रखते लिखी गई है.)

---

[35] अरविन्द केजरीवाल व विष्णु राजगढ़िया, 'सूचनाधिकार: नया लोकतंत्र, नयी पत्रकारिता' प्रभात खबर इंस्टीट्यूट ऑफ मीडिया स्टडीज, झारखंड, 2006

[36] सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 –कैसे करें इस्तेमाल, कबीर, नई दिल्ली.

570

वहीं मैग्सेसे अवार्ड से सम्मानित श्रीमति अरुणा रॉय भारत में सूचना के अधिकार का लागू होने का प्रमुख कारण राजस्थान में मज़दूरों व किसानों का संगठन 'मज़दूर किसान शक्ति संगठन' द्वारा चलाए गए को आंदोलन को ही मानती हैं. वह अपनी पुस्तक "जीने और जानने का अधिकार"[37] में एक स्थान पर लिखती हैं –"पिछले कई वर्षों से सेमीनारों और नीतिगत दस्तावेज़ों में सूचना के अधिकारों की चर्चा होती रही है. आज प्रत्येक राष्ट्रीय नेता और राजनीतिक दल का यही नारा है. परन्तु 'मज़दूर किसान शक्ति संगठन' (एम.के.एस.एस.) के संघर्ष को इतना महत्व इसलिए दिया गया, क्योंकि यह शायद पहला आंदोलन है जो स्वयं गांव वाले चला रहे हैं और जिसकी खास और प्राथमिक मांग 'सूचना का अधिकार' है. यधपि इस मुद्दे का जन्म गांव के गरीबों द्वारा रोजी रोटी के संघर्ष से हुआ है, परन्तु सूचना के लिए इनकी विशिष्ट मांग, सूचना के वैध अधिकार के दायरे में शामिल है जो सब नागरिकों को प्राप्त है. एम.के.एस.एस. ने सूचना के मुद्दे को और व्यापक बनाते हुए इस बात पर महत्व दिया कि सभी नागरिकों को अपने जीवन से सम्बंध रखने वाली सभी सूचनाओं को प्राप्त करने का जन्मजात अधिकार है. इस तरह एम.के.एस.एस. ने सभी हितों के समूहों को अपने संघर्ष से जुड़ने के सिए अवसर प्रदान किया."

बहरहाल, सूचना के इस अधिकार के सम्बंध में तो बातें बहुत सारी हैं. लेकिन संक्षेप में यदि इसके इतिहास की बात की जाए तो सरकारी तौर पर इसकी पहल 1989 में माना जा सकता है. क्योंकि 1989 में बी.पी. सिंह की सरकार ने पारदर्शी और जवाबदेय प्रशासन के लिए सूचना कानून लाने की बात कही. इसके साथ ही देश के कई गैर सरकारी संगठन इसके लिए सक्रिय हो गए. इस दिशा में लोगों को एकजुट करने के लिए मजदूर किसान शक्ति संगठन गठित किया गया. सन 1986 के आम चुनाव में करीब सभी रानीतिक दलों का यह राजनीतिक एजेंडा में शामिल रहा. इसके बाद इसी दिशा में आगे क़दम बढ़ाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे कार्यकर्ताओं ने मिलकर 'सूचना के जन अधिकार का राष्ट्रीय अभियान' (National Campaign for People's Right to Information) गठन किया. इसी बीच तमिलनाडु सरकार ने इस कानून को पारित कर दिया. इसके बाद 1997 में गोवा सरकार, वर्ष 2000 में राजस्थान में, इसी वर्ष महाराष्ट्र में, वर्ष 2001 में दिल्ली सरकार ने भी सूचना का अधिकार कानून पास कर दिया. मई, 2004 में कांग्रेस और वामपंथियों की सयुंक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) सरकार सत्ता में आई. संप्रग सरकार ने न्यूनतम साझा कार्यक्रम के माध्यम से यह वायदा किया कि वह एक स्वच्छ और पारदर्शी प्रशासन के लिये कटिबद्ध है. सरकार ने अपने वायदों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिये सोनिया गांधी की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति का गठन किया.

[37] अरुणा राय, जीने और जानने का अधिकार, मजदूर किसान शक्ति संगठन, राजस्थान, 1996

'सूचना के जन अधिकार का राष्ट्रीय अभियान' और अन्य सामाजिक संगठनों की मदद से सूचना का अधिकार कानून का एक ड्राफ्ट तैयार किया गया, जिसे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के पास भेजा गया. 23 दिसम्बर, 2004 को संप्रग सरकार ने इसे संसद के समक्ष प्रस्तुत किया. लोकसभा में एक लम्बी बहस के बाद 11 मई, 2005 को 146 संसोधनों के साथ सूचना के अधिकार का यह बिल ध्वनिमत से पास कर दिया गया. राज्य सभा द्वारा भी इसे अगले दिन पास कर दिया गया. राष्ट्रपति की मंजूरी के 120 दिनों की मियाद पूरी होने अर्थात् 12 अक्तूबर, 2005 से यह कानून समान रूप से पूरे देश में (सिर्फ जम्मू कश्मीर को छोड़ कर) लागू हो गया.

डॉ. शालू निगम अपनी पुस्तक 'सूचना का अधिकार : कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू'[38] में लिखती हैं कि देश के कई नागरिक संगठनों ने सरकार से सूचना प्राप्त करने के लिए कानून बनाने के लिए संघर्ष किया और परिणाम अब यह है कि आज सूचना का अधिकार हमें एक वैधिक रूप में प्राप्त हो चुका है जो बरसों से विद्यमान औपनिवेशिक अतीत, दमनकारी राज और तानाशाही के विरूद्ध एक चुनौति बन चुका है. आज हम गोपनियता की मानसिकता को ललकारने के लिए वैधिक रूप से तैयार हैं. अब लोकतंत्र को सही मायनों में स्थापित किया जा सकता है जिस कारण आज एक आम नागरिक सरकार द्वारा लागू की जाने वाली दमनकारी शक्तियों के सामने डट कर खड़ा हो सकता है और अपने हक़ के लिए लड़ सकता है.

डॉ. शालू निगम की यह पुस्तक भी इसी बात पर रौशनी डालती है कि देश का कोई भी नागरिक इस कानून का प्रयोग किस प्रकार कर सकता है. कानून के क्या प्रावधान है. इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी. आदि-अनादि...

सुची पांडे व शेखर सिंह की पुस्तक 'सूचना का अधिकार कानून-2005 : एक प्रवेशिका'[39], वी. के. पुरी की पुस्तक 'सूचना के अधिकार पर एक व्यवहारिक पुस्तिका'[40], प्रकाश कुमार व के.बी. राय पुस्तक 'सूचना का अधिकार'[41], के साथ-साथ सारी पुस्तकें इस बात पर ही केन्द्रित हैं कि सूचना के अधिकार का प्रयोग कैसे किया जाता है. इसके कानून क्या हैं. कौन सी धाराएं क्या बताती हैं. हमें आवेदन कैसे तैयार करना चाहिए. वगैरह-वगैरह...

---

[38] डॉ. शालू निगम, सूचना का अधिकार : कुछ सामाजिक व कानूनी पहलू, वी द पीपुल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

[39] सुची पांडे व शेखर सिंह(अनुवाद: कमाल अहमद), सूचना का अधिकार कानून-2005 : एक प्रवेशिका, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2009

[40] वी. के. पुरी, सूचना के अधिकार पर एक व्यवहारिक पुस्तिका, A JBA Publication, नई दिल्ली, 2013

[41] प्रकाश कुमार व के.बी. राय, सूचना का अधिकार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

572

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूचना के अधिकार पर अब तक जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं. वो सब इसके इतिहास, उसके कानूनी पहलू और प्रयोग को लेकर ही केन्द्रित हैं. यही नहीं, इसके अलावा जितने भी शोध कार्य हुए वो भी इस कानून की दशा व दिशा को लेकर ही है. और सबके सब इस कानून की राह में आने वाले चुनौतियों का ही ज़िक्र करते हैं. ज़्यादातर रिपोर्टों इस बात को लेकर बनी हैं कि सूचना आयोग में क्या-क्या कमियां हैं जुर्माना क्यों नहीं लगाया जा रहा है. आयोगों में पेंडिंग केसेज कितने हैं जन सूचना अधिकारी या सूचना आयोग का रवैया कैसा है. लेकिन जेल के वो कैदी जिन्हें अधिकतर मामलों में सारे अधिकारों से महरूम कर दिया जाता है, वो इस सूचना के अधिकार का सफल प्रयोग कैसे कर रहे हैं, इस पर एक भी पुस्तक अभी तक नहीं आई है. एक भी शोध-कार्य संभवत: नहीं हुआ है.

जेल पर भी जितनी पुस्तकें (खास तौर पर हिन्दी में) लिखी गई हैं, वो ज़्यादातर उन लोगों के द्वारा लिखा गया है जिन्होंने जेलों में अपनी सज़ा काटी है. ज़्यादातर पुस्तकों उनके व्यक्तिगत अनुभवों को लेकर हैं या फिर जेल में दिए जाने वाले यातनाएं या फिर वहां होने वाले अधिकारों के हनन को लेकर ही है एक भी पुस्तक या शोध या लेख इस बात पर नहीं है कि जेलों के काल कोठरियों में बंद क़ैदी सूचना के अधिकार का प्रयोग कैसे अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु कर रहे हैं.

हां! कुछ समाचार पत्रों में आई न्यूज़ ज़रूर हैं, जो यह बताते हैं कि जेल कैदी भी आरटीआई का जमकर इस्तेमाल कर रहे हैं.

समाचार एजेंसी आईएएनएस[42] के एक ख़बर के मुताबिक कैदियों के लिए भी सूचना का अधिकार कारगर बन गया है. देश के सबसे बड़े कारागार तिहाड़ जेल के कैदी सूचना के अधिकार (आरटीआई) को अपना हथियार बना रहे हैं.

यह ख़बर यह भी बताती है कि जेल सूत्रों के मुताबिक पिछले छह माह के दौरान लगभग 60 से अधिक आरटीआई के मामले जेल प्रशासन ने दर्ज किए हैं.

इस ख़बर के मुताबिक तिहाड़ जेल में कैदियों के उत्पीड़न के छिटपुट मामले सामने आते रहते हैं. कैदी अपने उत्पीड़न की शिकायत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में भी करते रहते हैं. लेकिन जब से सूचना के अधिकार का हथियार उनके हाथ लगा है तब से वे उत्पीड़न करने वाले अधिकारियों के खिलाफ इस अधिकार का प्रयोग कर रहे हैं. यह खबर यह भी बताती है कि कैदियों द्वारा प्रति माह औसतन 7 से 10 आरटीआई डाली जा रही है.

[42] http://khabar.ibnlive.in.com/news/20437/3/

वहीं नवभारत टाईम्स में प्रकाशित एक ख़बर[43] यह बताती है कि जेल के कुछ स्मार्ट कैदियों ने सूचना के अधिकार के तहत यह जानना चाहा है कि कितने अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार मामले में जांच चल रही है. कितने अधिकारियों और वॉर्डर आदि को अब तक किन-किन मामलों में सस्पेंड किया जा चुका है. जो कैदी जेल के हॉस्पिटल में भीतर हैं उनमें से कितने ही ऐसे हैं जो आरटीआई के माध्यम से अपना मेडिकल स्टेटस और अपनी डाइट के बारे में जानना चाहते हैं कि डॉक्टर ने उसमें क्या लिखा है. कुछ कैदी यह जानना चाहते हैं कि वह जेल से कितने दिनों में छूट जाएंगे और फिलहाल उनके केस का क्या स्टेटस है.

यह ख़बर यह भी बताता है कि जेल के कैदी आरटीआई के माध्यम से ऐसे भी जवाब मांगे जा रहे हैं कि फलां जेल में एक साल में कितनी बार ब्लेडबाजी हुई, उसमें कितने कैदी घायल हुए. एक साल के अंदर तिहाड़ जेल में कितनी मात्रा में प्रतिबंधित आइटमों में मोबाइल फोन, तंबाकू, बीड़ी और रुपये आदि मिले हैं.

यही नहीं, इस ख़बर के मुताबिक जिन कैदियों को 30 दिन के अंदर आरटीआई का जवाब नहीं मिलता है वह सेंट्रल इन्फमेर्शन कमिशन (सीआईसी) से इसकी शिकायत करते हैं. ऐसे कैदियों की फिर जेल से ही सीआईसी से विडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से बात कराई जाती है.

जेल के कैदियों द्वारा आरटीआई के बढ़ते इस्तेमाल को देखते हुए हिमाचल प्रदेश के राज्य सूचना आयोग ने एक आदेश में कहा है कि जेल के कैदियों को अब आरटीआई का लाभ नहीं मिल सकता. यह खबर अमर उजाला[44] ने प्रकाशित की है.

इस ख़बर के मुताबिक जेल में सजा काट रहे कैदियों को आरटीआई के तहत जानकारी लेने का अधिकार नहीं है. कैदी केवल अपने अधिकारों से संबंधित जानकारी ही आरटीआई के तहत ले सकते हैं

यह फैसला राज्य सूचना आयुक्त केडी बातिश ने सब जेल हमीरपुर के एक अंडर ट्रायल बंदी करण ठाकुर की अपील खारिज करते हुए सुनाया है. इस शॉर्ट ऑर्डर में आयुक्त ने स्पष्ट किया है कि सजा के दौरान कैदी के अधिकार संस्पेंड रहते हैं. आदेश में सूचना आयुक्त ने यह भी स्पष्ट किया कि सजा के दौरान कैदी उसे दिन में खाने के लिए कितनी डाइट मिलनी चाहिए, जेल मैनुअल के अनुसार एक कैदी के क्या अधिकार हैं, आदि की जानकारी ही ले सकता है.

इस ख़बर के मुताबिक करण ने जेल में लगे कैमरों में आए खर्चे और उसके कुछ फुटेज मांगे थे.

43 http://navbharattimes.indiatimes.com/metro/delhi/other-news/-/articleshow/5699718.cms
44 http://www.amarujala.com/news/states/himachal-pradesh/prisonars-on-rti/

लेकिन इसके विपरित सच्चाई यह है कि जेल के कैदियों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में सूचना प्राप्त करने का अधिकार के साथ-साथ अनुच्छेद 14,19 और 21 में दिए गये मौलिक अधिकार प्राप्त करने का भी अधिकार है. देश के अन्य नागिरकों की तरह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उन्हें भी प्राप्त है.

बहरहाल, इन दो-चार समाचारों को छोड़ दिया जाए तो जेल के कैदियों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले आरटीआई की कोई जानकारी पब्लिक डोमेन में मौजूद नहीं हैं. ऐसे में हमारी चुनौतियां और बढ़ जाती हैं. यह शोध ऐसे में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है.

Limitations (सीमाएं)

इस अध्ययन की अपनी कुछ सीमाएं रही हैं जैसे आर्थर रोड जेल प्रशासन के किसी भी तरह का सहयोग न मिलने के कारण जेल में बंद क़ैदियों से मुलाक़ात और उनका साक्षात्कार नहीं हो सका. ऐसी स्थिति में ज़मानत पर रिहा 6 क़ैदियों से ही साक्षात्कार हो सका. तो वहीं तिहाड़ जेल प्रशासन ने भी जेल के अंदर क़ैदियों से मिलने की इजाज़त नहीं दी. लेकिन 10 कैदियों से शोध से संबंधित प्रश्नावली भरवाने में सहयोग किया इसके अलावा हमने व्यक्तिगत स्तर पर इस जेल से ज़मानत पर रिहा हुए 2 क़ैदियों से साक्षात्कार किया.

तिहाड़ जेल से मिले भरी हुई प्रश्नावली से पता चला कि उनमें चार क़ैदियों ने कभी इस कानून का उपयोग नहीं किया. बल्कि एक ने यह भी माना कि उसे आरटीआई कानून क्या है, इसकी भी जानकारी नहीं है. जबकि तिहाड़ जेल मुख्यालय के सहायक जन सूचना अधिकारी स्वयं कहते हैं कि जेल में 15 क़ैदी ऐसे हैं, जिन्हें आप आरटीआई एक्टिविस्ट कह सकते हैं. लेकिन प्रश्नावली उन क़ैदियों से नहीं भरवाया गया. इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि शायद प्रशासन ने उन्हीं क़ैदियों को प्रश्नावली दी, जो उनके करीबी क़ैदी हैं या फिर यह भी कह सकते हैं कि प्रशासन ने अपने लोगों से प्रश्नावली भरवा दिया.

575

जेल : व्यवस्था का एक अहम हिस्सा

प्रसिद्ध विचारक अरस्तू ने कभी कहा था –"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है." कहने को यह एक छोटा सा वाक्य है, पर ये मनुष्य और समाज के बीच सम्पूर्ण सम्बंध को स्पष्ट कर देता है. वहीं आर.एम. मैकाइवर कहते हैं कि "समाज और व्यक्ति के सम्बंधों को स्पष्ट करने वाला कोई भी सिद्धांत न तो पूर्णतया व्यक्ति को महत्व दे सकता है और न ही समाज को, क्योंकि समाज और व्यक्ति दोनों ही एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और एक-दूसरे पर आश्रित हैं."

परन्तु सच तो यह भी है कि आदिम काल में मनुष्य ने समाज की कल्पना नहीं की थी. ऐसे में मनुष्यों की सामाजिक ज़िम्मेदारी भी तय नहीं किया जा सकी थी. वो जो चाहे करता था. कभी भी उसके ग़लत कार्य को अपराध नहीं माना गया. जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला सिद्धांत यहां लागू था. यानी जो जितना ताक़तवर था उतना ही सही था.

धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ एक तरह की सामाजिक व्यवस्था अस्तित्व में आने लगी. और अब कुछ अलिखित मापदंड व दिशा-निर्देश निर्धारित हुए. इन दिशा-निर्देशों व मापदंडों का पालन ज़रूरी तो नहीं पर समाज के अधिकांश सदस्य इनका पालन करना मुनासिब समझते थे क्योंकि ये उनके ही हित में था.

इस प्रकार अब एक अलग तरह का समाज स्थापित हो गई जो पहले के समाज से काफी भिन्न थी. कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए. ऐसे में जैसे-जैसे समाज में सामाजिक परिवर्तन होता गया, वैसे-वैसे लोगों की ज़रूरतें भी बढ़ती गई और मनुष्य की ज़िम्मेदारियां भी तय होती गई. सामाजिक परिवर्तन और बढ़ती ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ मनुष्यों के विचारों, व्यवहारों, मनोवृत्तियों और कार्य करने के तरीक़ों में भी बदलाव आता गया. इसके नतीजे में समाज में सामाजिक नियंत्रण पहले से कमज़ोर पड़ने लगा. लोगों में निराशा, पारस्परिक अविश्वास और भ्रष्ट आचरण में इज़ाफा होना शुरू हो गया. जिसके फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था के भीतर असंतुलन पैदा हो गया और यहीं से समाज में विघटन की शुरूआत भी हुई. इस सामाजिक विघटन रोकने के उदेश्य से समाज को हानि पहुंचाने वालों को दंडित करने का प्रावधान शुरू किया गया. इसका अहम मक़सद यह था कि समाज के सभी सदस्यों के व्यवहारों में समानता के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था भी क़ायम रहे. इसके लिए कुछ नियम कानून भी तय किये गये. और इनका उल्लंघन करने वालों को दंड देने का प्रावधान भी रखा गया

सर्वप्रथम आंख के बदले आंख या दांत के बदले दांत का सिद्धांत लागू किया गया. यही व्यवस्था लम्बे समय तक चलती रही. परन्तु हमारे समाज ने इस व्यवस्था को पसन्द नहीं किया.

लोगों ने सुचारू रूप से चलते रहने के लिए अपने बीच से ही एक संप्रभु सत्ता की स्थापना की, जिसे अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नाम से जाना गया. कहीं कबीले का सरदार हुआ तो कहीं लोगों ने राजा या सम्राट कहा. अब उसी राजा के द्वारा बनाए गए शासन संबंधी नियमों का पालन करने की स्वीकृति दे दी गई

इस व्यवस्था में राजा के द्वारा बनाए गए शासन संबंधी नियमों के विरूद्ध काम करने वालों को अपराधी कहा गया और उस अपराधी को उसके अपराध के मुताबिक दंड की व्यवस्था की गई. इस दंड का मक़सद सिर्फ और सिर्फ यह था कि समाज में रहने वाले लोग एक बनी बनाई व्यवस्था में अवरोध उत्पन्न न करें.

समाज के अधिकांश तबके इन कानूनों का पालन अपने भलाई के लिए करते थे, जबकि कुछ लोग दंड के भय से इन नियमों को मानते थे.

इस व्यवस्था में भी अपराधी को समाज से अलग रखने का प्रावधान था. ताकि वो समाज से दूर रहकर समाज की अहमियत को समझ सके. उस समय भी जहां अपराधी को रखा जाता था उसे कारागार ही कहा गया. इन कारागारों में रहने वाले अपराधियों की देखभाल व उनके सुरक्षा की ज़िम्मेदारी शासन की ही होती थी. लेकिन राजा के लोग इन पर अधिक ध्यान नहीं देते थे. कई मामलों में कई अपराधियों के साथ अत्याचार भी खूब होता था.

बहरहाल, इस प्रकार अपराधियों को स्वयं के गलत कार्यों का अहसास दिलाने के लिए कुछ संस्थानों का जन्म हुआ. जेल या कारागार या कारागृह इन्हीं संस्थानों में से एक है, जहां अपराधी को रखकर समाज को सुरक्षित करते हुए उनके अंदर सुधार की कोशिश की जाती है.

इतिहास की बात करें तो 17वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में ही विश्व के सभी देशों में जेलों या कारागारों की स्थापना ऐसे स्थानों के रूप में हुई, जिनका उदेश्य दंडित व्यक्ति को बंदी बनाकर रखने के साथसाथ उन्हें शारीरिक व मानसिक कष्ट देकर उनके द्वारा किए गए समाज विरूद्ध अपराधों के लिए प्रायश्चित कराना था.[1]

जेल या कारागार की परिभाषा की बात करें तो इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्दों से हुई है, (शब्द बताइए) जिसका अर्थ पकड़ना या बन्द करना (पिंजरा) होता है.[2] इनसाइक्लोपीडिया में जेल या कारागार की परिभाषा इस प्रकार है –"वह स्थान जो पूर्णतः व्यवस्थित है उस व्यक्ति के लिए जिसने कोई अपराध किया है,

---

[1] जॉन केली : बिहाइन्ड द गेट्स शट, पृष्ठ -7, लॉगमेल, लन्दन, 1767

[2] दी ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, भाग -8, पृष्ठ -1383, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1979

(57)

जिसे सुरक्षित रखा जाए, किसी न्यायिक जांच के पूर्ण होने तक या दंड प्रदान किए जाने तक"[3] फेयर चाइल्ड के अनुसार कारागार दंड देने वाला वो स्थान है, जिसका संचालन केन्द्रीय या राज्य की सरकार द्वारा किया जाता है, और जिसका उपयोग केवल प्रौढ़ अपराधियों के लिए होता है, जिनकी सज़ा एक वर्ष से अधिक होती है.[4] वहीं 1894 अधिनियम के अनुसार –"कारागार राज्य सरकार द्वारा परिभाषित वह स्थान है, जहां बंदियों को स्थायी या अस्थायी रूप से रखा जाता है."

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे देश भारत में 'जेल' ऐसा शब्द है, जहां अंडरट्रायल क़ैदियों और सज़ा काट रहे क़ैदियों दोनों को रखा जाता है. इसके अलावा हिरासत में लिए लोगों को भी इन्हीं जेलों में रखा जाता है.

आज़ादी के बाद भारत सरकार ने इस दिशा में विशेष ध्यान दिया. केन्द्र सरकार ने जेल व्यवस्था को सुधारने का कई प्रयास किए, लेकिन इसके बावजूद पहले ही की तरह अधिकार क्षेत्र पूरी तरह से राज्य सरकारों के ही हाथ में रहा.

हालांकि 1951 में केन्द्र सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ से अनुरोध किया कि वो कुछ विशेषज्ञों को भारत भेजे, जिन्हें जेल व्यवस्था में वैज्ञानिक पद्धति से अपराधियों से व्यवहार करने का ज्ञान हो. 1952 में बंबई में जेल अधिकारियों के द्वारा भारतीय जेल महानिरीक्षकों की एक अखिल भारतीय संगोष्ठी का आयोजन भी किया गया. इस संगोष्ठी में 'मॉडल प्रिजन मैन्युअल' प्रस्तावित किया गया था.

इसके बाद 1957 में भारत सरकार ने "ऑल इंडिया जेल मैन्युअल कमेटी" का गठन किया. इस कमेटी ने आदर्श कारागार नियमावली की रचना करके 1959 में अपनी रिपोर्ट दी, जिसे 1961 में गृह मंत्रालय ने स्वीकृत किया.

1958 में प्रावेशन ऑफ आफेन्डर एक्ट को मंजूरी दी गई जिसमें राज्यों के लिए जेल प्रशासन को चलाने की संपूर्ण प्रणाली तय की गई थी. 1961 में केन्द्र सरकार द्वारा एक केन्द्रीय सुधार संस्थान की स्थापना भी की गई, जिसने जेल सुधार के कई कार्य तय किए. इसके बाद भी समय-समय पर विद्वानों के सुझावों के आधारों पर जेल सुधार समितियों का गठन होता रहा, लेकिन जेलों में क़ैदियों के साथ अत्याचार होते रहे.

अक्टूबर 1971 में एक राष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें विभिन्न राज्यों के मुख्य कारागार निरीक्षकों ने पुनः जेल मैन्युअल में संसोधन करने की बात पर ज़ोर दिया. उनका कहना था कि जेलों में सुधार न हो पाने की प्रमुख वजह धन का अभाव है. इसी के मद्देनज़र 18 अक्टूबर 1972 को भारत सरकार ने एक 'वर्किंग ग्रुप ऑन प्रिजन्स

[3] इन साइक्लोपीडिया अमेरिकन, भाग -22, पृष्ठ -619, यू.एस., 1980
[4] इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंस, भाग -12, पृष्ठ -57-58, लंदन, 1951

इन द कन्ट्री' का गठन उन विधियों पर विचार करने के लिए किया, जिन्हें जेल सुधार का प्रमुख आधार माना गया.[5] इस वर्किंग ग्रुप ने अपनी रिपोर्ट 1973 में केन्द्र सरकार को सौंपी.

इसी वर्किंग ग्रुप के सुझाव पर केन्द्र सरकार ने जेलों में सुधार के लिए कई विभिन्न योजनाओं व सिफारिशों को पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत रखा तथा उसके लिए 100 करोड़ की राशि प्रदान की गई. साथ ही राज्य सरकार से यह अपेक्षा की गई कि वो भी राज्य के फंड से जेल सुधार के लिए अलग से खर्च करें. गृह मंत्रालय ने जेल सुधार एवं जेलों को आधुनिक बनाने के लिए 1977-78 में 2 करोड़ का बजट रखा. 1978-79 में बजट में यह राशि बढ़ाकर 4 करोड़ रूपये कर दी गई.[6] आगे के बजट में और इज़ाफा किया जाता रहा.

क़ैदियों के साथ होने वाले इसी अत्याचार को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपनी चिंताएं व्यक्त की थी संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1954 में अपने सभी सदस्य देशों को जेल प्रशासन में अभूतपूर्व परिवर्तन करने के सुझाव के लिए पत्र भेजे थे, जिसमें लगभग 44 सुझाव एवं नियमों का पालन करने का अनुरोध किया गया था.

इतना ही नहीं, जब भारत में जेल मैन्युअल का पालन करने में आना-कानी होने लगी तो समय-समय पर क़ैदियों व उनके परिजनों ने जेल में होने वाले अत्याचार के विरूद्ध न्यायालय गए. सुप्रीम कोर्ट ने भी जेलों में क़ैदियों के साथ अमानवीय, क्रूरतम, पशुवत, अशोभनीय, असभ्य एवं बर्बर व्यवहार के प्रति असंतोष एवं चिंता व्यक्त करते हुए संविधान में प्रदान किए गए मौलिक अधिकारों का संरक्षण प्रदान करने का प्रयास किया सुप्रीम कोर्ट के साथ-साथ राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी जेल सुधार के लिए दिशा-निर्देश जारी किए. परन्तु आज भी जेलों की हालत बहुत बेहतर नहीं कही जा सकी है. बल्कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की बहुत सी सिफारिशों को राज्य सरकारें नज़रअंदाज़ कर रही हैं.

समय-समय पर बनने वाले कई आयोगों की सिफारिशों में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि जेलों की आबादी जितना हो सके कम की जाए.

जेल व्यवस्था में सुधार लाने के लिए भारत में पहली कमेटी सन् 1836 में बनी, जिसे 'फेमस कमिटी' के नाम से जाना जाता है. इस कमिटी में लार्ड मैकाले भी शामिल थे. इस कमिटी के रिपोर्ट खास तौर पर इस बात पर ज़ोर

---

[5] C.S. Malliah, "Development of Prison Administration in India" Social Defence, Vol. XVII, No. 67, Page -40 Ministry of Social Welfare, Govt. of India, New Delhi, 1982

[6] Harish Chandra Saksena, "Prisons and Prison Relation", Vol. 1, Page -315, Publication Division, Govt. of India, New Delhi, 1987

दिया गया था कि किसी भी हालत में केन्द्रिय कारागारों में एक हज़ार से अधिक क़ैदी न रखे जाएं. कमिटी ने यह रिपोर्ट 1838 में पेश की थी.[7]

जेल व्यवस्था में सुधार के लिए दूसरी कमिटी 1864 में बनी. इस कमिटी का प्रमुख काम जेलों में बढ़ते मृत्युदर के असल कारण को जानना था. इस कमिटी ने उस समय पाया कि भारतीय जेलों में उस समय पिछले दस सालों में 46,309 क़ैदियों की मौत हुई थी. इस कमिटी ने इसके पीछे एक असल वजह जेलों में क़ैदियों की संख्या अधिक होने को माना था.[8]

लेकिन नेशनल क्राईम रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ें बताते हैं कि भारत की जेलों में कैदियों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है. भारत के 1391 जेलों में 3,47,859 कैदियों को रखा जा सकता है, लेकिन 31 दिसम्बर, 2013 तक के आंकड़े बताते हैं कि जेलों में कैदियों की संख्या 4,11,992 है. जबकि 2012 में 1394 जेलों में 3,85,135 क़ैदियों को रखा गया था. वहीं 2011 में भारत के 1382 जेलों में 3,72,926 कैदी अपनी सज़ा काट रहे थे.

आंकड़े यह भी यह बताते हैं कि साल 2013 में 13,95,994 अंडर ट्रायल कैदियों को रिहा किया गया. इन्हें रिहा कर देने के बाद भी 2,78,503 क़ैदी यानी 67.6 फीसदी अभी भी अंडर ट्रायल हैं. यही नहीं, 3,113 लोगों को सिर्फ शक की बुनियाद पर गिरफ्तार किया गया है. जेलों में सबसे अधिक भीड़ छत्तीसगढ़ राज्य में हैं. यहां के जेलों में 6070 कैदियों को रखा जा सकता है, लेकिन आंकड़े को मुताबिक फिलहाल यहां जेलों में 15840 कैदी बंद हैं

नेशनल क्राईम रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं महिलाओं के लिए विशेष तौर पर भारत में 19 जेल हैं. इन 19 के साथ अन्य जेलों में 4827 महिला क़ैदियों को रखा जा सकता है. लेकिन इस समय इनकी संख्या 18,188 है. जिनमें 5335 महिलाओं की सज़ा तय कर दी गई है. 12,688 महिलाएं अंडर ट्रायल हैं तो वहीं 98 महिलाओं को निरुद्ध भी किया गया है. इन आंकड़ों के मुताबिक 1603 महिलाएं अपने बच्चों के साथ जेलों में हैं, इनके बच्चों की संख्या 1933 है.

जेलों में बढ़ते भ्रष्टाचार व अत्याचार की कहानियां भी समय-समय पर आती रही हैं. तिहाड़ जेल में अपने अनुभव को बयान करते हुए किरण बेदी लिखती हैं –"इस धरती को नरक बनाने के लिए जो कुछ भी चाहिए, सब तिहाड़ जेल में मौजूद था –प्रशासन में चरम सीमा का भ्रष्टाचार, नज़रबंदी शिविरों जैसी बर्बरता, क़ैदियों के बीच कुशलता

---

[7] Kumkum Chanda, "The Indian Jail", Page No. -150, Vikas, New Delhi, 1983

[8] R.N. Datir, "Prison is a social System", Page -57, Popular Prakashan, Bombay, 1981

से सक्रिय माफिया, चिकित्सा कर्मियों द्वारा बेईमानी, मादक द्रव्यों का धड़ल्ले से मिलना, क़ैदियों और जेल-कर्मियों दोनों के द्वारा विकृत यौनाचार, लूट-खसोट, ब्लैकमेल और अस्वास्थ्यकर परिवेश..."[9]

ऐसे में जेल के शरीफ व पढ़े-लिखे क़ैदियों के पास इस भ्रष्टाचार व अत्याचार से निपटने कोई रास्ता नहीं था. इनकी बातों को कोई सुनने वाला भी नहीं था. ऐसे में जेल में जो भी योजनाएं थी, उनका सीधा लाभ उन्हीं को पहुंचता था, जो दबंग थे. हालांकि जेल में अपनी बात रखने के लिए सुझाव-पेटी का प्रचलन पहले से था. पर इस व्यवस्था की अंदरूनी खामी के कारण यह खास सफल नहीं थी. क्योंकि पेटी की चाबी किसी जेल कर्मचारी के ही पास रहती थी और वह कर्मचारियों के खिलाफ शिकायत पत्रों को निकाल कर नष्ट कर देता था. किरण बेदी ने आने के बाद याचिका पेटी की परिकल्पना को लागू किया गया. इस नई प्रणाली में याचिका पेटी घूमती रहती थी. मुख्यालय द्वारा नियुक्त एक कांस्टेबल साइकिल पर सवार होकर याचिका पेटी सहित बंदियों के खाली समय में जेल का चक्कर लगाता है. पेटी की चाबी मुख्यालय में एक राजपत्रित अधिकारी के पास रहती है, जो याचिकाओं की प्रकृति के अनुसार उनको छांट देता है. याचिकाओं की मुख्य-मुख्य बातों की सूची बनाकर आई.जी. (जेल) को देखने के लिए भेजी जाती हैं, जिसके बाद आवेदक को गुलाबी रंग का एक प्राप्ति-सूचना कार्ड भेज दिया जाता है. जहां आवश्यक हो, वहां अविलंब जांचपड़ताल की जाती है, और एक सप्ताह के भीतर आवेदक को एक हरे रंग का कार्ड मिलता है, जिसमें उसे यह सूचना दी जाती है कि उसके आवेदन पर कौन सी कार्रवाई की गई अथवा क्या निष्कर्ष निकाला गया है. यदि ऐसे किसी मामले में अधिक समय की आवश्यकता हो तो इस बात की सूचना भी प्रार्थी को एक सप्ताह के भीतर भेज दी जाती है.[10]

किरण बेदी के मुताबिक –"याचिकाओं से मुझे पता चलता है कि वास्तव में जेल के अंदर क्या होता है. शिकायतें कई तरह की होती हैं, जैसे –सुविधाओं की कमी, खराब खाना, चिकित्सा सुविधाओं की आवश्यकता, जेल कर्मचारियों द्वारा क़ैदियों को परेशान किया जाना तथा भ्रष्टाचार आदि! दरअसल, ऐसी ही एक शिकायत के कारण हेडवार्डर को स्थानांतरित भी किया गया. शिकायतों से ही पता चला कि वह वार्डर क़ैदियों को कैसे जानवरों की तरह पीटता था. यदि आवेदक स्वयं चाहे अथवा सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अधिकारी आवश्यक समझें तो आवेदक का नाम गुप्त रखा जाता था. इस प्रणाली के परिणाम स्वरूप याचिकाएं हाई कोर्ट में जाने के बजाए जेल प्रशासन के पास ही आने लगें. इससे अदालत का कार्यभार कम हुआ. क़ानूनी पैरवी का समय बचा, साथ ही जेल के निरीक्षण कार्य में भी बहुत सुधार हुआ."[11]

---

[9] किरण बेदी, "हिम्मत है!" पृष्ठ -138, डायमंड पॉकेट बुक्स(प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2014

[10] किरण बेदी, "हिम्मत है!" पृष्ठ -161, डायमंड पॉकेट बुक्स(प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2014

[11] किरण बेदी, "हिम्मत है!" पृष्ठ -162, डायमंड पॉकेट बुक्स(प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2014

581

लेकिन किरण बेदी के जाते ही हालात फिर से पुराने तौर-तरीकों पर लौटने लगे. "यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तिहाड़ का परिवर्तन-चक्र पूरा घूम चुका है और बहुत जल्द ही उसे अपने सब पुराने नाम लौटा दिए जाएंगे. किरण ने तिहाड़ जेल का नाम तिहाड़ आश्रम रखा था अर्थात सुधार का स्थान... उनके स्थानांतरण के बाद वहां के निवासियों ने तिहाड़ का पुनः नाम रख दिया है : तिहाड़ अनाथाश्रम.... "[12]

तिहाड़ जेल के क़ैदियों की दशा फिर से वही होने लगी. इन क़ैदियों के अब कोई अधिकार नहीं थे. यहां तक इनसे अभिव्यक्ति तक की स्वतंत्रता छीन ली गई थी. लेकिन 2005 में देश में सूचना के अधिकार कानून का लागू होना इनके लिए वरदान साबित हुआ. अब जेल के क़ैदी कम से कम इस कानून के ज़रिए अपने मिलने वाले सुविधाओं के बारे में सवाल तो कर रहे हैं. साथ ही इस बात का अहसास कि संविधान की नज़र में हम भी बराबर हैं. हमें भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हासिल है.

[12] किरण बेदी, "हिम्मत है!" पृष्ठ -225, डायमंड पॉकेट बुक्स(प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2014

अध्याय-3

सूचना और जेल

सूचना के अधिकार का इस्तेमाल अब हमारे सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है . अलग-अलग तबके व क्षेत्रों के लोग अपने हक़ की सूचनाएं पाने के लिए इसका प्रयोग धड़ल्ले से कर रहे हैं. लेकिन यह जानना बेहद दिलचस्प होगा कि जो सलाखों के पीछे रहकर अपने गुनाहों की सज़ा काट रहे हैं या अपनी बेगुनाही साबित करने की लड़ाई लड़ रहे हैं, उनके लिए सूचना का अधिकार कितना उपयोगी रहा है.

यह सोच ही बेहद खूबसूरत है कि जेलों में बंद क़ैदियों की ज़िन्दगी सूचना के अधिकार से किस तरह सकारात्मक तौर पर प्रभावित होती है. उनके जीवन पर यह अधिकार किस तरह से असर डाल रहा है. यह जानना जितना दिलचस्प था, शायद उससे कहीं अधिक मुश्किल भी...

ऐसा माना जाता है कि जो शासन अपने नागरिकों की बेहतरी चाहता है, वो संवेदनशील होता है, जागरूक व पारदर्शी होता है, अपनी ज़िम्मेदारियों से मुंह नहीं चुराता, समाज के प्रति उत्तरदायी होता है. यदि प्रशासन में यह विशेषताएं हैं तो वहां के नागरिकों में सुरक्षा की भावना होगी. सूचना का अधिकार इनके सबके सफल क्रियान्वयन में सहायक होता है.

उम्मीद थी कि जब आम लोगों को सूचना का अधिकार मिलेगा तब प्रशासनिक स्तर पर होने वाली गड़बड़ियों और भ्रष्टाचार के मामले सामने आएंगे और सरकार ऐसे मामलों में तत्काल दोषियों के खिलाफ कार्यवाही करेगी. लेकिन सूचना के अधिकार के तहत काम करने वाले आरटीआई कार्यकर्ताओं ने जब प्रशासनिक गड़बड़ियों और भ्रष्टाचार के मामलों का खुलासा करना शुरू किया तो उल्टे उन्हें ही झूठे मुक़दमों में फंसाकर जेल की हवा खिलाने का खेल भी इस देश में शुरू हुआ. इनमें से कुछ कार्यकर्ताओं ने जेल में रहने के बावजूद आरटीआई का प्रयोग करना न सिर्फ़ जारी रखा, बल्कि जेल में बंद अन्य बहुत सारे क़ैदियों को भी इस क़ानून से रूबरू करा दिया.

सच तो यह है कि सूचना के अधिकार का यह कानून देश में हमारे प्रशासन को पारदर्शी व जवाबदेह बनाने के लिए आया था. मगर इस कानून को लेकर हमारा जेल प्रशासन न तो बहुत ज़्यादा पारदर्शी व जवाबदेह है और न ही क़ैदियों को आरटीआई दाखिल करने देने में सहयोग करता है. बावजूद इसके जेल के अंदर मौजूद कुछ जागरूक कैदी जेल की इस व्यवस्था को पारदर्शी व जवाबदेह बनाने की पूरी कोशिश में लगे हुए हैं. शायद यही वजह है कि सूचना के अधिकार से आम आदमी का नहीं बल्कि जेल की सलाखों के पीछे कैद कैदियों के लिए

583

भी कारगर हथियार बन चुका है. अब जेल के क़ैदी इस कानून के ज़रिए जेल में मिलने वाली सुविधाओं के बारे में सवाल तो कर ही रहे हैं. साथ ही उन्हें इस बात का अहसास भी है कि संविधान की नज़र में हम भी बराबर हैं. हमें भी अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता हासिल है.

आर्थर रोड जेल में क़ैदियों द्वारा आरटीआई का उपयोग

मुंबई स्थित आर्थर रोड जेल के जन सूचना अधिकारी आर.बी. जगताप के मुताबिक जेल का हर क़ैदी सूचना के अधिकार क़ानून से बख़ूबी वाकिफ है. बल्कि अगर कोई जेल से बाहर रहते हुए इस क़ानून को नहीं जानता है तो जेल के अंदर आते ही इससे वाकिफ हो जाता है. क्योंकि कुछ क़ैदी जेल के अंदर इसके प्रचार-प्रसार का काम धड़ल्ले से कर रहे हैं. उनका इसके अलावा कोई दूसरा काम नहीं होता.

उनके अनुसार इस जेल में हर महीने औसतन 15-20 आरटीआई आवेदन आते हैं, जिनमें सारे आवेदन क़ैदियों के ही होते हैं. बाहर के लोग मुश्किल से एक या दो आरटीआई डालते हैं. वो भी वही होते हैं जो कभी जेलों में खुद रहे, ज़मानत पर रिहा हैं या फिर क़ैदियों के रिश्तेदार हैं. वो बताते हैं कि जेल के क़ैदी सिर्फ जेल तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि वो जेल के अलावा दूसरे मंत्रालयों या विभागों में भी अपनी आरटीआई खूब भेजते हैं.

क़ैदी अपने आरटीआई में क्या सूचना मांगते हैं? यह सवाल पूछने पर जगताप बताते हैं कि जेल के क़ैदियों की आरटीआई ज़्यादातर उनके निजी मामलों की ही होती है. अपने आरटीआई में क़ैदी आईडेंटिफिकेशन परेड के बारे सवाल पूछते हैं. वो पूछते हैं कि इस परेड में कौन आया, कहां से आया? इस परेड की रिपोर्ट कोर्ट में भी जमा होती है, क़ैदी उसे भी मांगते हैं. क़ैदी अपने मेडिकल के कागजात भी मांगते हैं, क्योंकि उन्हें कई बार इस मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर ज़मानत मिल जाती है. कई बार जेल रिकार्ड भी मांगते हैं. यही नहीं, वो गेट इंट्री तक की रिपोर्ट मांगते हैं. एक क़ैदी का जिक्र करते हुए उन्होंने बताया कि उसने एक सरकारी विभाग से पूरे देश का पिन-कोड मांगा था, और उसे मिला भी.

आर.बी. जगताप के मुताबिक क़ैदियों के ज़्यादातर आरटीआई 'थर्ड पार्टी इंफोर्मेशन' से संबंधित होती है. ऐसे आरटीआई का आप क्या करते हैं? यह सवाल पूछने पर वो बताते हैं कि ऐसी स्थिति में हम उस क़ैदी को बुलाते हैं, जिसके बारे में सूचना मांगी गई है. बुलाने के बाद उसे उस आरटीआई के सवाल के बारे में बताते हैं. अगर वो मना कर दे तो फिर हम सूचना नहीं देते.

जगताप ने हमें यह भी बताया कि 26 जुलाई 2005 के पहले की सूचना अब उनके पास नहीं है, क्योंकि इसी दिन मुम्बई में बाढ़ आई थी, जिसमें जेल के रिकार्ड नष्ट हो गए.

584

आर.बी. जगताप के अनुसार तीन-चार साल पहले तक क़ैदियों की आरटीआई जेल प्रशासन खुद के खर्च पर भेजा करती थी. पर जब इनकी संख्या बहुत अधिक हो गई तो हमने यह प्रक्रिया बंद कर दिया. अब वो डायरेक्ट अपनी आरटीआई कहीं भी भेज सकते हैं. इसका खर्च भी वो खुद ही वहन करते हैं.

बातचीत के दौरान एक क़ैदी मेरे सामने ही एक आरटीआई आवेदन लेकर आया. जिसे जगताप जी ने पढ़कर हस्ताक्षर करते हुए लिफाफे पर जेल का मुहर लगा दिया. पूछने पर मालूम चला कि वो क़ैदी जेल से बाहर अपनी आरटीआई भेज रहा है. और जेल से बाहर जाने वाला हर आरटीआई बग़ैर उनके पढ़े बाहर नहीं जा सकती.

जेल से सारे आरटीआई जन सूचना अधिकारी के पढ़ने के बाद ही जाते हैं. कारण पूछने पर उनका कहना था कि जेल नियमावली के मुताबिक जेल से बाहर जाने वाले तमाम पत्रों को पढ़ने के बाद ही बाहर जाने दिया जाता है. यहां तक कि इनके नीजि पत्रों को भी हम पढ़ने के बाद ही बाहर जाने देते हैं. इसकी वजह यह है कि कहीं क़ैदी किसी को धमका तो नहीं रहा है या फिर आत्महत्या की बात नहीं कर रहा है. श्री जगताप यह भी मानते हैं कि जेल से पत्र लिखने का ट्रेंड अब काफी कम हो गया है.

हालांकि जेल के अंदर किसी भी कैदी से बातचीत की इजाज़त नहीं थी . लेकिन आर.बी. जगताप से इजाज़त लेते हुए हमने उस क़ैदी से बातचीत की. बातचीत के क्रम में मालूम हुआ कि उस क़ैदी ने जेल में रहते हुए बीएससी की पढ़ाई पूरी की है, अब वो एमएससी प्रथम वर्ष में है. अभी तक कुछ किताब नहीं आने के बारे में वो अब आरटीआई डाल रहा है. उस क़ैदी का कहना था कि 'जेल मेरे लिए एक यूनिवर्सिटी है. जेल के अंदर बहुत कुछ सीखा है. आरटीआई डालने का पूरा ज्ञान भी मुझे जेल के अंदर ही मिला. और अब तक 14-15 आरटीआई फाईल कर चुका हूं.'

जेल के अंदर भी पढ़ाई... इस पर आर.बी. जगताप बताते हैं कि दिल्ली के इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय व महाराष्ट्र के यशवंत राव चौहान मुक्त विश्वविद्यालय ने इस जेल के क़ैदियों को मुफ्त में पढ़ने की व्यवस्था कर रखी है. परीक्षा भी जेल के अंदर होती है. (सच तो यह है कि यह मुफ्त शिक्षा भी एक क़ैदी के आरटीआई की ही देन है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे.)

आरटीआई आवेदन के बाद इन क़ैदियों की समस्या तब और बढ़ जाती है, जब उन्हें सूचना हासिल नहीं होती. सूचना के अधिकार के प्रावधानों के तहत इन क़ैदियों को प्रथम या द्वितीय अपील दाखिल करना पड़ता है. लेकिन अपील के सुनवाई में क़ैदियों का जाना इतना आसान नहीं है. आर.बी. जगताप बताते हैं कि प्रथम अपील में क़ैदी सुनवाई में नहीं जा पाता है. कभी-कभी वीडियो कांफ्रेंस के ज़रिए आयोग की सुनवाई होती है. लेकिन इसके लिए आरोपी क़ैदी को कोर्ट में आवेदन देना पड़ता है, अगर अदालत ने परमिशन दे दी तो उसे हम

पुलिस हेडक्वार्टर को बताते हैं. फिर वीडियो कांफ्रेस की व्यवस्था की जाती है. जगताप के मुताबिक उनके रहते भर में पिछले तीन सालों में सिर्फ 4-5 वीडियो कांफ्रेंस ही अब तक आर्थर रोड जेल में हुए हैं इतनी कम संख्या के पीछे का कारण वो यह बताते हैं कि क़ैदियों को सूचना आवेदन के बाद ही समय पर मिल जाती है.

हालांकि जनवरी 2013 से दिसंबर 2013 तक के उपलब्ध आंकड़े बताते हैं कि इस साल सिर्फ 205 आवेदन आए. इसके पिछले महीने के भी 10 आवेदन पहले से मौजूद थे. इनमें से 124 आवेदनों में क़ैदियों को सूचना दे दी गई. जबकि 74 आवेदनों की सूचना देने से मना कर दिया गया. अगर प्रथम अपील की बात करें तो इसकी संख्या इस दौरान 20 रही. तीन अपील को स्वीकृत किया गया. लेकिन 14 अपीलों को खारिज कर दिया गया.

आर.बी. जगताप बातों-बातों में बताते हैं कि अभी तक महाराष्ट्र की जेलों में 1894 में अंग्रेज़ों के ज़रिए बनाए गए कानून ही लागू है. बस 1979 में महाराष्ट्र सरकार ने इसमें थोड़ा बदलाव किया था. हालांकि सरकार ने मॉडल प्रिजन एक्ट भी बनाया है लेकिन इसे अभी तक लागू नहीं किया जा सका है.

तिहाड़ जेल के क़ैदियों द्वारा आरटीआई का उपयोग

तिहाड़ जेल (हेडक्वार्टर) के सहायक जन सूचना अधिकारी जोरावर सिंह के अनुसार यहां क़ैदियों के आवेदनों पर सूचना देने के लिए 11 जन सूचना अधिकारी व 11 सहायक जन सूचना अधिकारी हैं.

उनके मुताबिक दूसरे जेलों की तुलना में यहां आरटीआई आवेदन अधिक संख्या में आते हैं. 1 अप्रैल, 2013 से लेकर 31 मार्च 2014 तक के उपलब्ध आंकड़े बताते हैं कि इस दौरान 720 आरटीआई के आवेदन जेल हेडक्वार्टर में आए हैं. वहीं प्रथम अपील की संख्या सिर्फ 65 रही है.

जोरावर सिंह बताते हैं कि यहां वैसे तो जेल के लगभग सारे ही क़ैदी सूचना के अधिकार क़ानून से बखूबी वाकिफ हैं. लेकिन तकरीबन 15 क़ैदी बहुत आरटीआई दाखिल करते हैं. यानी कह सकते हैं यहां जेल में 15 आरटीआई एक्टिविस्ट क़ैद हैं. सबसे बड़ी समस्या यह है कि 10 रूपये में ही 300 सवाल पूछ डालते हैं. इसलिए मेरा मानना है कि सवालों की संख्या की एक सीमा तय होनी चाहिए. यही नहीं उनका कहना है कि आरटीआई के जवाब देने के लिए अलग से आरटीआई सेल का होना भी ज़रूरी है. क्योंकि यहां जन सूचना अधिकारी व सहायक जन सूचना अधिकारी पर कई और भी ज़िम्मेदारियां दी गई हैं.

मीडिया के कुछ रिपोर्ट बताते हैं कि तिहाड़ में बंद कुछ 'निठल्ले कैदी' दूसरे विभागों के सरकारी अफसरों का खूब 'भेजा फ्राई' कर रहे हैं. इस मीडिया रिपोर्ट[1] के मुताबिक तिहाड़ जेल की चहारदीवारी में बंद कैदी आरटीआई के ज़रिए दिल्ली चिड़ियाघर प्रशासन से अजीबो-गरीब सवाल कर रहे हैं. चिड़ियाघर प्रशासन इन सवालों से परेशानी में है. तिहाड़ में बंद कैदी रमेश की दो आरटीआई प्रधानमंत्री कार्यालय के मार्फत दिल्ली चिड़ियाघर पहुंची है. रमेश ने अपनी पहली आरटीआई में चिड़िया घर प्रशासन से पूछा है कि क्या गलियों में घूमने वाले कुत्ते और बिल्ली साढ़े तीन फुट ऊंची दीवार फांद सकते हैं? चिड़ियाघर प्रशासन ने इसका जवाब हां में दिया है. दूसरी आरटीआई में उसने सवाल किया है कि समुद्र में कितने तरह के जीव-जंतु व पक्षी पाए जाते हैं. चिड़िया घर प्रशासन ने इसके लिए उसे जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया कोलकाता और वाइल्ड लाइफ इंस्टीट्यूट देहरादून से संपर्क करने को कहा है. वहीं, एक क़ैदी बबलू ने पूछा है कि चिड़ियाघर में कुल कितने कूलर लगे हैं? इस पर जवाब दिया गया कि 38 कूलर लगे हैं.

क़ैदियों के आरटीआई से तिहाड़ जेल के जन सूचना अधिकारी भी परेशान हैं. जोरावर सिंह कहते हैं कि यहां उजूल-जलूल आरटीआई के आवेदन खूब आते हैं. कुछ आरटीआई तो ऐसे होते हैं कि आप इन्हें पढ़ भी नहीं सकतें. तो कुछ आरटीआई में यह पूछते हैं कि जेल में स्वतंत्रता दिवस कब मनाई जाती है? एक आरटीआई में यह पूछा गया था कि नॉन-वेज खाने के क्या नुक़सान हैं? वहीं एक क़ैदी ने एक बाबा के इतिहास के संबंध में काफी सारी जानकारी मांगी थी. उसने पूछा था कि 'जय बाबा गुरूदेव' तिहाड़ में कब आए थे? वो क्या खाते थे? क्या पहनते थे? क्या उनसे काम करवाया जाता था? आदि-अनादि!

वो आगे बताते हैं कि क़ैदी यहां तक पूछते हैं कि जेल ऑफिशियल किस दिन वर्दी में आया था और किस दिन नहीं? उनके मुताबिक आरटीआई का दुरूपयोग अधिक हो रहा है. ज़्यादातर आरटीआई का मक़सद सिर्फ और सिर्फ परेशान करना होता है. लोग आपसी झगड़े में इंतक़ाम की भावना से भी आरटीआई डालते हैं. कुछ लोग तो एक आरटीआई में 300 तक सवाल कर डालते हैं.

इन सबके विपरित अगर सामान्य तौर पर देखा जाए तो क़ैदियों के निजी सवाल अधिक होते हैं. जोरावर सिंह बताते हैं कि क़ैदी जेल में मिलने वाली सुविधाओं को लेकर खूब आरटीआई डालते हैं. इनमें ज़्यादातर सवाल मुलाकात, सिटीजन चार्टर, जेल में मिलने वाले खाने से संबेधित होता है. यहां तक क़ैदी डाइट स्केल के बारे में भी सवाल करते हैं. कभी-कभी परेशान करने के मक़सद से यह भी पूछते हैं कि किस तारीख़ में क्या खाना बना था? अपने मनोरंजन के बारे में भी सवाल पूछते हैं. टीवी को लेकर भी सवाल करते हैं. इसके अलावा उनके अपने निजी सवाल भी होते हैं. आरटीआई के माध्यम से ट्रांसफर को लेकर भी सवाल पूछते हैं. कस्टडी

1 http://www.amarujala.com/news/states/delhi/prisoners-asking-funny-questions-in-rti/

सर्टिफिकेट भी आरटीआई से मांगते हैं. मेडिकल व मेडिकल रिपोर्ट्स व वेजेज (हिंदी) के बारे में भी सवाल करते हैं. कई बार उनके द्वारा मांगी गई सूचना 'थर्ड पार्टी' से संबंधित होती है आईपीसी के पुस्तक भी आरटीआई से मांगते हैं.

जोरावर सिंह बताते हैं कि क़ैदियों को इंडियन पोस्टल ऑर्डर जेल कैंटीन में ही मिल जाता है. क़ैदियों को सूचना समय से मिल जाती है, इसलिए उन्हें प्रथम अपील करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती. और द्वितीय अपील की संख्या तो और भी कम हो जाती है. अगर कोई क़ैदी द्वितीय अपील करता है तो उस मामले में सुनवाई वीडियो कांफ्रेंसिंग के ज़रिए होती है अब तक चार सुनवाईयां वीडियो कांफ्रेंस के माध्यम से हुई है

जेल में ही रूबरू हुए आरटीआई क़ानून से..

मुम्बई के आर्थर रोड जेल से ज़मानत पर रिहा हुए 6 क़ैदियों से हमने साक्षात्कार किया, वहीं दिल्ली के तिहाड़ जेल से ज़मानत पर रिहा हुए 2 क़ैदियों से ही हमारी मुलाक़ात हो सकी. इसके अलावा तिहाड़ जेल प्रशासन ने जेल के अंदर बंद 10 क़ैदियों से हमारी प्रश्नावली भरवाकर हमारी मदद की.

इनमें से ज़्यादातर क़ैदी बताते हैं कि जेल में आरटीआई जानने का माध्यम उनके लिए अख़बार रहा है. तिहाड़ के जेल न. 2 में रहे 32 साल के आरोपित (convicted) क़ैदी मुकेश खन्ना, 8 सालों से इसी जेल में रह रहे 28 साल के संदीप परमार, 5 सालों से जेल न. 8/9 में रह रहे 26 वर्षीय उमेश कुमार ने सूचना के अधिकार के इस कानून को जेल के अंदर अख़बारों के ज़रिए जाना है.

वहीं आर्थर रोड जेल में एक साल रहने के बाद ज़मानत पर रिहा होने वाले विचाराधीन क़ैदी इलियास खान बताते हैं कि आरटीआई के बारे में उन्होंने पहले से सुन रखा था, पर पूरी जानकारी जेल के अंदर ही क़ैदी साथियों से मिली. साढ़े पांच साल आर्थर रोड जेल में रहने के बाद ज़मानत पर रिहा होने वाले विचाराधीन क़ैदी नुरूल होदा भी आरटीआई से जेल में ही रूबरू हुए. वो बताते हैं कि जेल जाने से पूर्व वो किसी भी क़ानून से रूबरू नहीं थे. जेल के अंदर फ़रोग मख़दूमी नामक क़ैदी से आरटीआई सीखी . क्योंकि मख़दूमी ने जेल के अंदर आरटीआई से ही आरटीआई की एक किताब मंगवाई. वो किताब अंग्रेज़ी में थी इसलिए मख़दूमी ने उसे जेल के बाक़ी क़ैदियों के लिए उर्दू में अनुवाद कर दिया. अब उर्दू में किताब होने के कारण हम आरटीआई को अच्छे से समझ पाए और दूसरे क़ैदियों को भी इसकी जानकारी दी जो उर्दू नहीं जानते थे या पढ़े-लिखे नहीं थे.

7.5 साल जेल में रहने के बाद ज़मानत पर रिहा होने वाले विचाराधीन क़ैदी जावेद अहमद भी बताते हैं कि उन्हें उर्दू अख़बारों के साप्ताहिक कॉलम से आरटीआई की जानकारी मिली. फिर क़ैदियों के ज़रिए इसके बारे में और सीखने को मिला. खासतौर पर फरोग़ मख़दूमी से हम सबको काफी ज़्यादा फायदा हुआ.

जबकि 5 साल आर्थर रोड जेल में रहने के बाद ज़मानत पर रिहा हुए विचाराधीन क़ैदी मख़दूमी बताते हैं कि वो आरटीआई को मीडिया के ज़रिए जानते थे. लेकिन कैसे डालते हैं, इसकी जानकारी नहीं थी, इसका फॉरमेट मालूम नहीं था.... जेल के कुछ क़ैदी पहले से आरटीआई के बारे में जानते थे. उन्हीं में से एक क़ैदी ने मुझे फॉरमेट लाकर दिया. बस वहीं से हमें आरटीआई के बारे में और जानकारी मिली तथा हमने आवेदन डालना शुरू किया.

वहीं 14 साल तिहाड़ में रहकर बेगुनाह साबित हुए एक क़ैदी मो. आमिर खान बताते हैं कि 2005 में जब आरटीआई क़ानून इस देश में लागू हुआ था, तब उस समय वो जेल में ही थे. और जेल के अंदर ही अखबारों के माध्यम से इस कानून से रूबरू हुए. कुछ दिनों बाद जेल के कुछ क़ैदियों से इसे व्यवहारिक रूप से जाना.

क़ैदी क्यों डालते हैं आरटीआई?

ज़्यादातर क़ैदी अपने निज़ी मामलों में ही आरटीआई फाईल करते हैं. ताकि सूचना के आधार पर खुद को निर्दोष साबित कर सकें. मुकेश खन्ना, संदीप परमार व सलमान फारसी बताते हैं कि उन्होंने अपने केस से संबंधित जानकारी के लिए ही आरटीआई दाखिल की थी

इलियास खान बताते हैं कि जेल में जिन्हें लग रहा था कि उनके साथ सही नहीं हुआ है. कई बार यह हुआ कि व्यक्ति लॉकअप में है और पुलिस कुछ और कह रही है, फिर ऐसे स्थिति में आरटीआई ही सहारा बचता है. इलियास आगे बताते हैं कि 'जितने भी सरकारी अधिकारी हैं. क़ानून की बात करते हैं. बहुत अच्छी बात है. लेकिन जब खुद क़ानून के पालन की बात आती है तो वो क़ानून के मुताबिक चलते नहीं . ज़रा सोचिए! कितना दिलचस्प है कि यह पुलिस वाले क़ानून की बात करके हमें अंदर करते हैं. हमें क़ानून सिखाते हैं. लेकिन सड़कों पर इन्हें क़ानून तोड़ते देखता हूं. क़ानून को बेचते देखता हूं. तो क्या इनके लिए कोई क़ानून नहीं है? जब ये खुद क़ानून का दुरूपयोग कर रहे हैं तो इन्हें सज़ा क्यों नहीं मिलती? जब मैंने खुद देखा कि आर्थर रोड जेल में ग़लत हो रहा है. जेल मैन्युअल में हमें जो अधिकार मिलें हुए हैं, उसका पालन नहीं हो रहा है. जेल के अंदर भी रिश्वत का ज़बरदस्त माहौल है. तो मुझसे रहा नहीं गया. और हमारे लिए अंतिम विकल्प सिर्फ और सिर्फ आरटीआई ही थी.'

32 वर्षीय नुरूल होदा बताते हैं कि 'जेल ने हमें काफी कुछ सिखा दिया. जेल के अंदर ही हमने 12वीं पास की, और बीए (प्रथम वर्ष) भी पूरा किया. हालांकि ज़मानत पर रिहा होने के बाद फिर से पढ़ाई रूक गई है.'

वो बताते हैं कि जेल के अंदर बहुत सारी समस्याएं थीं. खाना बिल्कुल भी दुरूस्त नहीं था. एक बार मेरे ही खाने में बैगन की सब्ज़ी में कीड़े मिलें... घर वालों से मुलाकात में बड़ी परेशानी थी. शुरू में तो हमें अपने लोगों से मिलने ही नहीं दिया जाता था. पुलिस हमारी मानसिक प्रताड़ना तो करती ही थी, साथ ही साथ घर वालों को भी परेशान किया जाता था...

आगे वो बताते हैं कि जेल में भी गुंडे होते हैं. उनसे हमें धमकाया गया. हमें इतना प्रताड़ित किया गया कि हम इसको शब्दों में बयान नहीं कर सकते. बोलते-बोलते नुरूल होदा की आंखों से आंसू छलक पड़ते हैं . फिर से खुद को संभलाते हुए वो बताते हैं कि 48 दिनों तक हमें थर्ड डिग्री टार्चर से गुज़ारा गया. बहुत मुश्किल समय था वो... ऐसे में आरटीआई ही उम्मीद के एक किरण के तौर दिखाई दी, जिससे लगा कि हम कुछ कर सकते हैं... हम अपनी बेगुनाही साबित कर सकते हैं... और हुआ भी ऐसा ही...

जावेद अहमद बताते हैं कि हमें जान-बुझ कर एक केस में फंसाया गया... हम पर झूठे आरोप लगाए गए... ऐसे में अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए सिर्फ और सिर्फ आरटीआई ही एक सहारा था. हमने इससे अपने केस से संबंधित कई सूचनाएं मांगी जो हमारे केस में काफी काम आया और अभी भी आ रही है.

14 साल साल जेल में रह चुके मो. आमिर खान बताते हैं कि जेल में राशन एक बड़ी समस्या है. किसी क़ैदी को कितनी मात्रा में खाना मिलना है, यह पहले से तय होता है. लेकिन सच्चाई यह है कि जो पहले से तय है, वो मिलता नहीं है. शायद अनाज बचाकर ब्लैक में बेच दिया जाता है. तो हम क़ैदियों ने आरटीआई से इस संबंध में जानकारी मांगी. प्राप्त जानकारी से जेल में मिलने वाले खाने की तुलना की. काफी अंतर था कागज़ो व हक़ीक़त में... फिर इस मामले में कोर्ट में शिकायत की. अब इस मामले को लेकर भ्रष्टाचार करने वाले अधिकारी घबराए... और खुद बखुद हालात में काफी सुधार आया.

डॉ. फ़रोग़ मख़दूमी भी बताते हैं कि जब वो आर्थर रोड जेल में गये तो वहां भ्रष्टाचार और बुराइयां बहुत ज्यादा थी. ख़ास तौर से जेल का जो कैन्टिन डिपार्टमेंट है, वहां पर जो चीज़ें कैदियों के लिए बेचीं जाती हैं वो मार्केट से 5 गुना ज्यादा कीमत में बेचीं जाती हैं. जो एम.आर.पी. होता थी, उससे ज्यादा कीमत वसूल की जाती थी. इस बारे में जब जेल सुप्रीटेन्डेन्ट से शिकायत की गई तो उन्होंने कहा कि हमारे जेल में ऐसा कुछ नहीं है. अगर ऐसा कुछ होता है तो आप उसको ऑन रिकॉर्ड लाइए और फिर बताइये. उसके बाद कई मामलों से हम लोगों ने सुप्रीटेन्टेड को रूबरू करवाया. और साबित किया कि यहां भ्रष्टाचार हो रहा है. लेकिन इसके बावजूद वो कोई ग़लती मानने को तैयार नहीं थे. बल्कि उसके बाद ये हुआ कि एम.आर.पी. वाली चीज़ें जेल में बिकनी बंद हो

गई और ऐसी चीज़ें बेचीं जाने लगी, जिस पर एम.आर.पी. नहीं होती थी "खुली चीज़ें" कितने में खरीदीं जा रही हैं और कितनी एम.आर.पी. है? जेल के रूल्स-रेगुलेशन क्या हैं? इस बारे में जब उनसे पूछा जाता तो उनको जो समझ में आता अपनी तरफ से कह देतें थें... हमें समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए... आरटीआई तो हम पहले से जानते थे, लेकिन कैसे डाला जाता है, इसकी जानकारी नहीं थी. जेल में हम क़ैदियों ने काफी बात-चीत करने के बाद एक क़ैदी ने मुझको आरटीआई का फॉरमेंट लाकर दिया. साथ ही यह भी कहा -"ये आरटीआई का फॉरमेंट है. अगर आपमें हिम्मत है तो ये अपने नाम से देकर देखिये." बस यहीं से हमने अपने ज़िन्दगी की पहली आरटीआई दाखिल की. तबसे सिर्फ जेल के भीतर से 702 आरटीआई फाईल कर चुका हूं...

क्या सूचना मांगते हैं जेल के क़ैदी?

जेल प्रशासन की अगर माने तो ज़्यादातर क़ैदी अपने केस के संबंध में ही आरटीआई आवेदन डालते हैं या फिर आरटीआई का मक़सद परेशान करना होता है. लेकिन इस शोध में सामने आया कि कई ऐसे मुद्दों पर भी वो आरटीआई फाईल कर रहे हैं, जिनका सरोकार जेल में फैले भ्रष्टाचार या जेल से बाहर समाज के बेहतरी से है.

तिहाड़ जेल नं. 2 में रहने वाले क़ैदी आशीष उप्पल पिछले सात सालों से अधिक समय से जेल में हैं. इस दौरान उन्होंने 30 से अधिक आरटीआई डाली हैं. उनकी सारी आरटीआई का मक़सद जेल व्यवस्था में सुधार लाना था, यानी सारी आरटीआई जेल को लेकर ही थी. वहीं उमेश कुमार बताते हैं कि वो जेल में रहते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय से पढ़ाई कर रहे हैं. 2011 में होने वाले एक परिक्षा में वो शामिल नहीं हो सकें, जिसके कारण वो फेल क़रार दिए गए. अब उन्होंने आरटीआई के माध्यम से दुबारा परीक्षा देकर इम्प्रूव करने और पास करने से संबंधित नियमकानून की कॉपी मांगी है.

इलियास खान बताते हैं कि आर्थर रोड जेल की क्षमता 804 कैदियों के रखने की है, लेकिन लगभग तीन हज़ार क़ैदी जेल में रहते हैं. अब ऐसे में किसी को खाना 200 वाला मिलना है, तो उसे 20 वाला भी नहीं मिल पा रहा है. सारी ज़्यादतियां विचाराधीन क़ैदियों के साथ की जाती है. जब अदालत ने इन्हें कोई सज़ा नहीं दिया तो फिर उन्हें गुनाहगारों वाली सज़ा पुलिस व जेल प्रशासन क्यों देती है? वो आगे बताते हैं कि यहां डॉक्टरों की ज़बरदस्त मनमानी है. जो बीमार हैं, उसका कहीं कोई इलाज नहीं हो रहा है. लेकिन जिसने लाख-दो लाख रूपये दे दिया, उन्हें अच्छे हॉस्पीटल में वीआईपी ट्रीटमेन्ट के साथ रखा जाता है. दूसरी तरफ जेल के अंदर इलाज के अभाव में क़ैदी मर रहे हैं. मैंने खुद अपनी आंखों से एक क़ैदी को मरते देखा है. इसका जवाबदेह कौन है? हमने स्वास्थ्य व खाने को लेकर कई आरटीआई फाईल की हैं.

नुरूल होदा बताते हैं कि जेल के अंदर लगभग 60 से अधिक आरटीआई फाईल की. आरटीआई से ही अपने परीक्षा का रिजल्ट भी मंगवाया. सच्चर कमिटी व रंगनाथ मिश्रा कमीशन की रिपोर्ट की कॉपी भी मंगवाई ताकि समझ सकूं कि इस रिपोर्ट में क्या है. वो बताते हैं कि पहले जब इस संबंध में आरटीआई डाली तो सूचना अधिकारी ने कहा कि फलां-फलां वेबसाईट पर जाकर रिपोर्ट देख सकते हैं. लेकिन मेरे लिए यह कहां मुमकिन था? फिर मैं अपील में गया, अपनी मजबूरी को बताया तो अपील के बाद कॉपी मिल गई.

जावेद अहमद बताते हैं कि वैसे तो मेरी ज़्यादातर आरटीआई पुलिस स्टेशन के संबंध में रही हैं. इसके अलावा हमने मेडिकल सुविधाओं को लेकर भी आरटीआई डाली. कैन्टिन के संबंध में भी आरटीआई डाली कैन्टिन रेट का मसला हमेशा से रहा है. समान सही नहीं होते थे. आरटीआई से इस संबंध में सूचना भी मिली. कुछ बदलाव भी आया. लेकिन फिर बाद में सब अपने पुराने ढर्रे पर लौट पड़े.

इसके अलावा हमने जेल में मुलाकात को लेकर आरटीआई फाईल की. असल मुद्दा यह है कि जिनका परिवार दूर रहता है, उन्हें अपने लोगों से मिलने के लिए तरसना पड़ता है. और मिलने के सिवाय उनसे बात करने का कोई दुसरा तरीका भी नहीं है. पुलिस हमें तो परेशान करती ही है, परिवार के लोगों को भी परेशानी में डालती है. मेरी मां व 75 साल की दादी के लिए मुझसे मिलना काफी कठिन कार्य था, पर वो तमाम परेशानियों को झेलकर मुझसे मिलने आते थे. कई बार उन्हें सड़कों के किनारे इधर-उधर रात गुज़ारनी पड़ती थी. पुलिस मिलाने के नाम पर रिश्वत मांगती है. हमने आरटीआई के माध्यम से सूचना जमा की कि बैंगलौर सेन्ट्रल जेल, पश्चिम बंगाल के जेलों व दिल्ली के तिहाड़ जेल व रोहिणी डिस्ट्रीक जेल में क़ैदियों को अपने घर बात करने के लिए टेलीफोन की सुविधा मिली हुई है. इसके लिए जेल प्रशासन ने कुछ समय व रेट तय किया हुआ है. इससे दूर के क़ैदियों का यह फायदा होता है कि उन्हें अपने परिवार को मिलने के लिए बुलाना नहीं पड़ता. फोन के माध्यम से ही बात हो जाती है. लेकिन इस तरह की सुविधा अभी महाराष्ट्र के जेलों में नहीं है. हमने सूचना एकत्रित करके एक पीआईएल बॉम्बे हाई कोर्ट में फाईल की, जिसे कोर्ट ने 05 अगस्त, 2013 को रिट पेटिशन के तौर पर स्वीकार कर लिया.

डॉ. फरोग़ मखदूमी ने जेल में रहते हुए 702 आरटीआई फाईल की. इन आरटीआई में उन्होंने अपनी सूचनाओं से अधिक सामाजिक मुद्दों, जेल सुधार व अपने जन्म स्थान मालेगांव को लेकर सवाल किए. इसके अलावा इन्होंने कई राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं के बारे में आरटीआई दाखिल कर सूचनाएं एकत्र की. जैसे- मुस्लिम आरक्षण, इस्लामिक बैंकिंग और सच्चर कमेटी की शिफारिश के तहत राज्यो में होने वाले काम की स्थिति, जो अल्पसंख्यक समुदायों के लिए सरकार द्वारा किया जा रहा है.

मख़दूमी बताते हैं कि जेल के क़ैदियों के लिए ड्रेस कोड की इनफार्मेशन मांगी थी. जेल के कैन्टीन में होने वाले टेंडर के संबंध में भी आरटीआई डाली जब पहली बार एक लाईब्रेरी से सूचना मांगी तो उसमें मुझसे पैसे मांगे गए. तब हमने सूचना आयोग में अपील कर कहा कि हम जेल के क़ैदियों के पास आय का कोई स्रोत नहीं होता, इसलिए हमें बीपीएल मानते हुए मुफ्त सूचना दी जाए. राज्य सूचना आयोग ने हमारी बातों को मान लिया और जेल के तमाम क़ैदियों को बीपीएल मानकर मुफ्त सूचना दी जाने लगीं. बाद में फिर जेल के सूचना अधिकारी मनमानी करने लगे तो हमारे एक कैदी साथी ने इस मसले को कोर्ट में पेश किया, तब कोर्ट ने भी आदेश दिया कि जेल के कैदियों को मुफ्त सूचना दी जाए. इसके अलावा इग्नू को भी आरटीआई डाली. आरटीआई के बाद इग्नू ने क़ैदियों के लिए शिक्षा मुफ्त कर दी. हम क़ैदियों के आरटीआई से जेल में तब्दीली आनी शुरू हो गई थी. अब हमारी हिम्मत और बढ़ती गई. फिर हमने अपने मालेगांव के कई मुद्दों पर आरटीआई फाईल की, कई मामलों में काफी सकारात्मक परिणाम देखने को मिले.

मो. आमिर खान बताते हैं कि वो अपने रिहाई के समय तिहाड़ जेल के सीनियर जेल ऑफिसर से मिलें और उनसे अपने 14 साल जेल रहते हुए कैसा आचरण किया, इसके लिए अपना कैरेक्टर सर्टीफिकेट की मांग की, पर उन्होंने देने से इंकार कर दिया. कहने लगे कि 'किसी क़ैदी ने आज तक अपना कैरेक्टर सर्टिफिकेट नहीं मांगा, तुम लेकर क्या करोगे? क्या काम आएगा वो तुम्हारे?' उस समय मैं कुछ नहीं कर सकता था, पर जेल से निकलने के बाद हमने आरटीआई दाखिल करके अपना कैरेक्टर सर्टिफिकेट मांगा. आरटीआई से मुझे मेरा कैरेक्टर सर्टिफिकेट मिल गया. जिसमें लिखा था –इस कार्यालय में उपलब्ध दस्तावेज़ों के आधार पर बन्दी मो. आमिर खान का आचरण इस कारागार में सही पाया गया है. वहीं एक दूसरे जेल ने लिखा –उक्त बंदी द्वारा इस कारागार में निरूद्धि के दौरान कारागार के नियमों का पुर्णतया पालन किया गया था तथा उसका आचरण सन्तोषजनक एवं प्रशंसनीय रहा.

कितना मुश्किल है जेल में सूचना पाना?

जेल में सूचना पाना कठिन नहीं तो इतना आसान भी नहीं है. तिहाड़ जेल के जेल नं. 2 में रहने वाले 41 वर्षीय क़ैदी विनय कुमार व संदीप परमार जेल में आरटीआई से सूचना पाना काफी मुश्किल काम मानते हैं. वहीं तिहाड़ में रहने वाले मुकेश खन्ना का कहना है कि जेल से आरटीआई बाहर भेजने के लिए जेल प्रशासन से अनुमति लेना पड़ता है, जो इतना आसान भी नहीं है. काफी मुश्किल काम है.

वहीं आर्थर रोड जेल में रह चुके और ज़मानत पर रिहा हुए सलमान बताते कहते हैं –'ज़रा सोचिए! जिस जेल में कागज़-क़लम तक मिलना मुश्किल हो, वहां आरटीआई फाइल करना कितना मुश्किल होता होगा. हमने अपने

खुद के जेल से जेल मैन्युअल की कॉपी मांगी थी, वो भी हमें आरटीआई से नहीं मिल सकी थी. सच तो यह है कि हमें सिर्फ 'जवाब' मिलता है, 'सूचना' नहीं.'

नुरूल होदा बताते हैं कि आरटीआई की वजह हमें जेल में काफी परेशानी उठानी पड़ी. कोशिश की जाती थी कि हमारे पास कागज़ क़लम न पहुंचे. इसके बाद जेल प्रशासन ने आरटीआई डालने वाले तमाम क़ैदियों को ही अलग कर दिया. जब उससे भी काम नहीं चला तो हम सबको अलग-अलग जेलों में भेज दिया गया. किसी को कोल्हापूर तो किसी को नागपूर... मुझे कुछ समय के लिए रत्नागिरी जेल में भेजा गया था. वो आगे बताते हैं कि वहां भी तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया. मारा-पीटा गया. फिर हम लोगों ने अदालत में इस सिलसिले में अपील की तो उसके बाद फिर से आर्थर रोड जेल वापस लाया गया. यहां भी वापस फिर से प्रताड़ित किया जाने लगा. प्रताड़ित करते समय तरह-तरह की गालियां बकते थे. हर बार यह बोलते थे कि बहुत आरटीआई फाईल करते हो, हम तुम्हे अब आरटीआई फाईल करने लायक छोड़ेंगे नहीं. हर तरह से कोशिश की जाती थी कि हमारे आरटीआई बाहर न जाने पाए. फिर हम लोगों ने अदालत का सहारा लिया.

जावेद अहमद भी बताते हैं जेल में सूचना मांगना या मिलना आसान बात नहीं है. हर तरह से टाल-मटोल की जाती है. समय पर सूचना मिलती ही नहीं. कभी देते ही नहीं हैं, तो कभी आधी-अधूरी सूचना भेज देते हैं. अपील करो तो भी कोई फायदा नहीं... अपील में हम जा नहीं पाते हैं, तो अधिकारी लिखता है कि आवेदक अनुपस्थित रहा, इसलिए अपील निरस्त की जाती है.

इलियास का कहना है कि हमने स्वास्थ्य व खाने को लेकर कई आरटीआई फाईल की, पर अभी तक कोई जवाब नहीं मिला है. सच तो यह है कि जहां ये लोग फंसते हैं, वहां ये लोग कोई सूचना नहीं देते. आप कर भी कुछ नहीं सकते. अपील करते हैं तो भी इनको कोई फर्क नहीं पड़ता. और आयोग में कितना समय लगता है, यह तो पूरा हिन्दुस्तान जानता है. वो आगे यह भी बताते हैं कि पर मैं छोडूंगा नहीं, बस एक सूचना मिल जाए. फिर मैं उसके आधार पर अदालत जाउंगा.

डॉ. फ़रोग़ मख़दूमी की कहानी तो और भी चिंतनीय है. वो बताते हैं कि पहले तो धमकी दी गई कि –हम लोग कुछ नहीं करेंगे... जेल के दूसरे कैदियों से आपको मरवा देंगे... और इत्तेफ़ाक ऐसा कि मैं 6 दिसम्बर को जेल में गया था. और शायद 31 दिसम्बर को ही जेल में एक मर्डर हुआ था. एक कैदी ने दूसरे कैदी को मार दिया था.

वो बताते हैं कि जेल प्रशासन ने तो यहां तक बोला था कि –हमलोगों के लिए कोई मुश्किल नहीं है... जेल में हम किसी को भी मरवा सकते हैं... मैं तो बिल्कुल डर गया. लेकिन अगले ही पल हिम्मत करके अदालत में इसकी शिकायत कर दी. तो इसके बाद अदालत ने जेलर को नोटिस दिया कि हमें पूरी प्रोटेक्शन दिया जाए. साथ ही अदालत ने पूरी सूचना देने का भी आदेश दिया. उसके फौरन बाद जेल सुप्रिडेंडेट स्वाति साठे ने मुझे व

हमारे साथियों को बुलाकर बोला कि तुम लोग अदालत में शिकायत मत किया करो. दूसरे कैदियों का मामला छोड़ो... तुम लोगों को हम जेल में पूरी फैसिलिटी देंगे.

फरोग आगे बताते हैं कि एक तरफ तो अच्छी फैसिलिटी देने की बात की गई और दूसरे दिन हम लोगों को कैदी कपड़ा पहना कर इंसल्ट करने की कोशिश की गई. जब हमने पूछा क़ैदी कपड़े पहनने से इंसल्ट कैसे? तो फरोग का कहना था कि हम लोगों को सिविल कोड कपड़े की परमिशन थी. खैर, अदालत के आदेश के बाद भी सूचना नहीं मिली तो फिर से हमने सूचना के लिए अदालत में अर्जी दी. फिर अदालत का आदेश हुआ कि 30 दिनों के अंदर पूरी सूचना उपलब्ध कराई जाए. आदेश के बाद भी आधी-अधूरी सूचना ही हासिल हुआ. लेकिन इस आरटीआई का रिजल्ट ये सामने आया कि जेल के हर बैरक के अंदर कैन्टिन में जितनी भी बेची जाने वाली चीज़ें थी, उसकी प्राइस-लिस्ट लगाई गई और एक नोटिस भी लगाई गई कि रेट से ज्यादा कोई कैदी पैसा न दे. अगर कोई भी इससे ज्यादा कीमत में बेचता हुआ पाया गया तो उसके खिलाफ केस बनेगा. मेरी पहली आरटीआई थी. आगे मुश्किलें और बढ़ती गई. तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया. हर तरह से लालच देने की कोशिश की गई. लेकिन इनकी तमाम कोशिशें हमने कामयाब नहीं होने दिया...

वहीं दूसरी तरफ पूर्व केन्द्रीय सूचना आयुक्त श्री शैलेष गांधी बताते हैं कि आयोग में कैदियों के कई मामले मेरे पास आएं. वो सारे मामले तिहाड़ जेल के ही होते थे. उनकी अपील की सुनवाई करते समय मेरा झुकाव आवेदकों की ओर अधिक होता था. क्योंकि मुझे अहसास होता था जिसका यह अपील है, वो बहुत कमज़ोर है, और कमज़ोरों के लिए सूचना की कितनी अहमियत है, इसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता.

क़ैदी क्या सोचते हैं आरटीआई के बारे में?

मो. आमिर खान का कहना है कि –'आज़ादी के बाद अगर हमें पावर मिली है, तो वो आरटीआई के रूप में ही मिली है. इससे अच्छा गरीबों व मज़लूमों के लिए कोई क़ानून नहीं हो सकता'

नुरूल होदा बताते हैं कि जेल के अंदर सूचना हमारे लिए कितनी अहमियत रखती है, इसे मैं शब्दों में बयान नहीं कर सकता. इस क़ानून को और मज़बूत करने की ज़रूरत है.

जावेद का कहना है कि आरटीआई असल में एक ऐसा क़ानून है, जो अवाम का है. गहरी नज़र से देखता हूं तो मुझे लगता है कि यह क़ानून सिर्फ और सिर्फ हमारे लिए ही बना है. बार-बार यह कहा जाता है कि आरटीआई का लोग मिस-यूज़ कर रहे हैं, लेकिन सच तो यह भी इसका क़ानून का मिस-युज़ इस क़ानून के रखवाले ही कर रहे हैं. कभी सूचना न देकर, तो कभी टाल-मटोल करके... कई बार सूचना रहते हुए कि जान-बुझकर आरटीआई

595

सारे दफ्तरों का चक्कर कटवा देते हैं. और इस चक्कर में नुक़सान देश का ही होता है. सच तो यह है कि इसमें भी कई भ्रष्ट अधिकारी घोटाले कर रहे हैं.

इलियास कहते हैं कि उन्हें पहले लगता था कि इस देश में क़ानून नाम की कोई चीज़ नहीं है. क़ानून के जो रखवाले हैं वो क़ानून का ग़लत इस्तेमाल कर सकते हैं. लेकिन जब आरटीआई का पता चला तो पहली बार अहसास हुआ कि इस देश में क़ानून है, और अब क़ानून की ही चलेगी. कानून के रखवालों को भी किसी भी क़ानून के दुरूपयोग करने से रोक सकते हैं.

फ़रोग़ मख़दूमी का कहना है कि सूचना व नॉलेज ही ऐसी चीज़ है, जो किसी को भी ताक़तवर बना सकती है. जब लोगों के पास सूचना होगी, तो वो देश के विकास में अपनी ज़िम्मेदारी भी ईमानदारी के साथ निभा सकेंगे. इस क़ानून का इस्तेमाल करके हम देश की तस्वीर को बदल सकते हैं.

निष्कर्ष

भारत में 'सूचना का अधिकार'(आरटीआई) कानून का लागू होना एक ऐतिहासिक उपलब्धि है. इसने इस देश के नागरिकों को पहली बार सही अर्थों में लोकतंत्र में जीने का एहसास दिलाया है. यदि देखा जाए तो आज बेहतर जीवन की बातें करना आसान है, लेकिन जीने का अधिकार ही आज सबसे बड़ा सपना है. जब जीने का अधिकार होगा तभी तो बेहतर और गरिमापूर्ण जीवन जीने की बात पैदा होगी. सूचना के इस अधिकार को हम जीने का अधिकार इसलिए कह सकते हैं, क्योंकि यह आम लोगों को मदद पहुंचाने में सक्षम है, भ्रष्टाचार को रोक सकता है, लोगों को अधिकार संपन्न बनाता है और संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों की प्राप्ति में भी सहायक है. क्योंकि सूचना के इस अधिकार के साथ अभिव्यक्ति, भोजन, काम, न्याय पाने, शिक्षा, स्वास्थ्य व अन्य सभी अधिकार जुड़े हुए हैं. झुग्गी-झोंपड़ी से लेकर बड़े बांधों तक से विस्थापित लोगों, दिल्ली का दिहाड़ी मज़दूर नन्नू हो , बिहार का रिक्शाचालक 'मज़लूम' या फिर जेल की काल कोठरी में बैठा कोई क़ैदी.... सबको एक सम्मानपूर्ण ज़िंदगी देने का सपना इस अधिकार के उपयोग से साकार हो सकता है.

हमारे इस शोध में स्पष्ट तौर से इस बात सामने आई कि सामान्य लोगों की तरह जेल में बंद जागरूक क़ैदी भी आरटीआई जैसे क़ानून का उपयोग कर रहे हैं. हालांकि इस प्रक्रिया में उन्हें बहुत सारी व्यवहारिक कठिनाईयों का भी सामना भी करना पड़ता है. जेल प्रशासन का रवैया अधिकांशतः सकारात्मक नहीं रहता. लेकिन इसके बावजूद भी क़ैदियों के द्वारा आरटीआई कानून का उपयोग समय के साथ-साथ बढ़ता जा रहा है.

पहले जेल के शरीफ़ व पढ़े-लिखे क़ैदियों के पास जेल में होने वाल भ्रष्टाचार व अत्याचार से निपटने या अपनी बेगुनाही को साबित करने के लिए कोई खास रास्ता उपलब्ध नहीं था. सच तो यह है कि इनकी बातों को कोई सुनने वाला भी नहीं था. ऐसे में जेल में जो भी योजनाएं थी, उनका सीधा लाभ उन्हीं को पहुंचता था, जो दबंग थे.

लेकिन अब पढ़े-लिखे जागरूक कैदी सामान्यतः अपनी अदालती कार्रवाईयों से संबंधित सूचना तो मांगते ही हैं और साथ ही जेल प्रशासन से जेल के अंदर होने वाली असुविधाओं और अपने अधिकारों के संदर्भ में भी सूचना की मांग करते नज़र आ रहे हैं.

कुछेक मामलों में यह भी प्रकाश में आया है कि क़ैदी केवल सूचना भर ही नहीं मांगते हैं, बल्कि प्राप्त सूचना का सकारात्मक उपयोग भी करते हैं. उदाहरण के तौर पर एक क़ैदी ने महाराष्ट्र के जेलों में दिल्ली की तिहाड़ जेल

की तर्ज पर क़ैदियों के लिए टेलीफोन सुविधा उपलब्ध कराने के संदर्भ में बॉम्बे हाई कोर्ट में एक जनहित याचिका भी डाली है, जिसे अदालत ने रिट पेटिशन के तौर पर स्वीकार कर लिया है. एक क़ैदी ने जब आरटीआई दाख़िल की तो उससे फीस के तौर पर पैसे मांगे गए, तो इस पर उसका तर्क था कि जो क़ैदी जेल के अंदर है, वहां उनकी कोई कमाई का ज़रिया नहीं है. इसलिए जेल के क़ैदियों को बीपीएल मानते हुए मुफ्त सूचना उपलब्ध कराई जाए. वो इस मामले को लेकर राज्य सूचना आयोग के साथ-साथ अदालत भी लेकर गया. फैसला उसके पक्ष में था, और जेल के क़ैदी मुफ्त में सूचना हासिल कर रहे हैं.

वहीं एक अन्य क़ैदी की पहल पर इंदिरा गांधी अंतर्राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने जेल में बंद सभी क़ैदियों के लिए पढ़ने की सुविधा उपलब्ध कराई. इसके अलावा ऐसे कई उदाहरण सामने आएं, जिसमें क़ैदियों ने इन आरटीआई से सिर्फ जेल ही नहीं, बल्कि उनकी आरटीआई से उनके इलाके में भी काफी बदलाव आये. इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जेल में बंद क़ैदियों ने न केवल अपनी व्यक्तिगत सहुलियत के लिए आरटीआई का उपयोग किया बल्कि सामान्य समस्याओं के निकारण के संदर्भ में भी आरटीआई का सहारा लिया है.

हालांकि यह भी देखने को मिला कि सूचना हासिल करना इनके लिए इतना आसान नहीं रहा. इन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया. तो कई बार इन्हें कई तरह की लालच भी दी गई. लेकिन जेल प्रशासन की ये तमाम कोशिशें जेल में मौजूद आरटीआई के सिपाहियों ने नाकाम बना दी. क़ैदियों की आरटीआई ने न सिर्फ जेल की व्यवस्था में परिवर्तन लाया, बल्कि समाज में भी कई तरह परिवर्तन लाने में इनकी आरटीआई की महती भूमिका रही है.

जेल के क़ैदी खुद यह मानते हैं कि देश में पहली बार इस क़ानून ने उन्हें सब कुछ दिया, जिसकी वो कल्पना जेल में रहते हुए कर भी नहीं सकते थे. उनके लिए यह कानून जीने का अधिकार के समान है. उनके लिए यह क़ानून किसी वरदान से कम नहीं है.

Suggestion (सुझाव)

- जेल प्रशासन को अपने काम में पारदर्शिता लाने की ज़रूरत है.
- आरटीआई जैसे मज़बूत कानून के बारे में क़ैदियों को समय-समय पर जागरूक किए जाने की ज़रूरत है, ताकि वो और बेहतर तरीके से इसका उपयोग कर सकें.

Suggestion (सुझाव)

- जेल प्रशासन को अपने काम में पारदर्शिता लाने की ज़रूरत है.
- जेल प्रशासन को आरटीआई की धारा -4(1)(b) में दिए तमाम 17 बिन्दुओं पर सूचना वेबसाइट और जेल के नोटिस बोर्ड पर लगाने का आदेश दिया जाए. खासतौर पर (i) जेल में क्या-क्या काम होना चाहिए, (ii) जेल के कर्मचारियों और अधिकारियों की शक्तियां और ज़िम्मेदारियां, (iii) जेल में हो रहे समस्त कार्यक्रमों हेतु आवंटित राशि, बजट और सारी योजनाओं पर प्रस्तावित खर्चे और किए गए खर्चों की पूरी जानकारी, (iv) जेल मैन्यूअल जैसी तमाम जानकारियों की कॉपियां जेल के क़ैदियों के लिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए.
- जेल के अंदर क़ैदियों के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जहां जेल के क़ैदी जेल के तमाम अभिलेखों को देख सकें. (इसकी चर्चा आरटीआई की धारा -4(1)(b) में बिन्दू-15 में की गई है.)
- जेल में आने वाले तमाम आरटीआई व प्रथम अपील और आवेदक को दी गई तमाम जानकारी को वेबसाइट पर डाला जाना चाहिए. इस संबंध में DoPT, 21 अक्टूबर, 2014 को जारी अपने ऑफिस मेमोरेंडम (1/11/2013 –IR) में दिशा-निर्देश दे चुकी है.
- जो सूचना बार-बार क़ैदियों द्वारा मांगी जा रही है, उन्हें ऑनलाईन कर दिया जाना चाहिए (इस संबंध में केन्द्रीय सूचना आयोग दिशा-निर्देश दे चुकी है). साथ ही क़ैदियों के लिए जेल में हार्ड कॉपी भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए.
- जेल अधिकारियों को 29 जून, 2015 को DoPT के ज़रिए जारी ऑफिस मेमोरेंडम (No. 1/34/2013 –IR) को पालन करने का आदेश देना चाहिए.
- किसी भी जेल ने अपनी सूचनाएं वेबसाईट पर नहीं डाली हैं. यहां तक कि आरटीआई की धारा 4(1)(b) का भी पालन जेल प्रशासन नहीं कर रहा है. इसके लिए सरकार उन्हें इसका पालन करने को विवश करे ताकि जेल की हक़ीक़तों से बाहर की दुनिया के लोग भी रूबरू हो और क़ैदियों को भी सूचना मांगने की नौबत न आए, (इस संबंध में DoPT 15 अप्रैल, 2013 और 22 सितम्बर, 2014 को एक ऑफिस मेमोरेंडम (No. 1/6/2011 –IR) जारी कर चुका है.)
- आरटीआई जैसे मज़बूत कानून के बारे में क़ैदियों को समय-समय पर जागरूक किए जाने की ज़रूरत है, ताकि वो और बेहतर तरीके से इसका उपयोग कर सकें.

- आरटीआई डालने की वजह से यदि किसी क़ैदी को प्रताड़ित किया जाता है और इसकी शिकायत केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग को मिलती है तो इस स्थिति में सूचना आयोग की एक टीम इसकी जांच करें और दोषी अधिकारियों को बर्खास्त किया जाए.

- क़ैदियों की आरटीआई और उनकी आरटीआई से आने वाली सूचना को जेल प्रशासन के पढ़ने पर रोक लगाई जाए.

- जेलों में क़ैदियों को ऑनलाईन आरटीआई के इस्तेमाल के लिए एक सिस्टम और कुछ समय के लिए इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध कराई जाए. इंटरनेट का ग़लत इस्तेमाल न हो, इसके लिए बाकी तमाम बेवसाईटों को इस सिस्टम पर ब्लॉक भी किया जा सकता है.

- जन सूचना अधिकारियों को यह आदेश दिया जाए कि वो किसी भी हाल में कैदियों को 30 दिनों में सूचना उपलब्ध करा दें ताकि क़ैदियों को अपील करने की ज़रूरत ही न पड़े.

- पूरे देश में जेल के क़ैदियों को बीपीएल मानते हुए मुफ्त आरटीआई फाईल करने की सुविधा होनी चाहिए, यहां तक कि उन्हें डाक सुविधा भी मुफ्त दी जानी है.

- DoPT की ओर से देश के तमाम जेलों के क़ैदियों के लिए सूचना हासिल करने के लिए एक स्पष्ट गाईडलाईन बनाने की ज़रूरत है, जैसे ऑस्ट्रेलिया जैसे अन्य कई देशों में है.

6

परिशिष्ट

इस शोध के दौरान हमने अपने शोध से संबंधित3 आरटीआई भी दाखिल किया था. इनके नाम व पता इस प्रकार हैं:

Central Public Information Officer
OFFICE OF THE DIRECTOR GENERAL (PRISONS)
PRISONS HEADQUARTERS; TIHAR; NEW DELHI

Central Public Information Officer
Arthur Road Jail
Jivraj Ramji Boricha Rd, Lower Parel,
Mumbai, Maharashtra -400013

Central Public Information Officer
Dept. of Personnel & Training
Ministry of Personnel, PG & Pensions
North Block, New Delhi -110001.

मुम्बई के आर्थर रोड जेल ने हमारी आरटीआई को वापस कर दिया. जिसे हमने दुबारा भेजा. तिहाड़ जेल ने अपने सारे जेलों में हमारे आवेदन को हस्तांतरित किया था. पर कोई सूचना हमें अब तक नहीं मिल सकी है. ज़्यादातर जेलों ने कार्मिक मंत्रालय के एक सर्कूलर का हवाला देकर सूचना देने से मना कर दिया है. ऑर्थर रोड जेल ने अभी तक कोई सूचना नहीं दी.

इन आरटीआई में मांगी गई सूचना इस प्रकार है:

1. Please provide me the photocopies of rules/regulations/instruction/manuals/guidelines for filing of RTI by prisoners of your jail.

2. Please provide me the list of prisoners, who filed RTI from jail in last five years. Provide me the photocopies of RTI application also.

601

Application under the Right to Information Act, 2005.

(See Rule 3)

To,

Central Public Information Officer
OFFICE OF THE DIRECTOR GENERAL (PRISONS)
PRISONS HEADQUARTERS; TIHAR; NEW DELHI

R.T.I. Ref. No.:- IIF-A105

(Please quote this Ref. No. in all future correspondence on this RTI application)

1. **Full name of the applicant:** Afroz Alam Sahil

2. **Address:** F-56/23, Sir Syed Road, Batla House, Okhla, New Delhi-25

3. **Description of the information required:** (Kindly provide Stamped, Signed and Certified True Copies or Attested Copies or Authenticated Copies of information provided on this RTI application. Kindly provide the information point-wise and in Hindi or English language as far as possible as required under Section 6 (1), 4 (3) and 7 (9) of the RTI Act, 2005.)

1. Please provide me the photocopies of rules/regulations/instruction/manuals/guidelines for filing of RTI by prisoners of your jail.

2. Please provide me the list of prisoners, who filed RTI from jail in last five years. Provide me the photocopies of RTI application also.

Please note:–

a. If you do not directly deal with this application or a part thereof, kindly forward it to the right PIO u/s 6(3) of RTI act with intimate to me. You are required to do so within 5 days of receipt of this application as per sec 6(3) of the act.

b. If you want to deny any of the information sought by me then please quote the exemption clause of Section 8 (1) and a brief reason as to how it applies. This is a requirement of the RTI Act, as per Section 7 (8) (i) read along with Section 19 (5).

602

4. Whether information is required by post or in person: By Post.

I am depositing the application fee (Rs.10/-) through INDIAN POSTAL ORDER (No- 11F 048951) Please put the name of the payee to whom to this postal order be made payable to.

Date:- 30 September, 2014

Place:- New Delhi

Signature of the Applicant

(तिहाड़ जेल को डाली गई आरटीआई... यही आरटीआई मुम्बई के आर्थर रोड जेल को भी डाला था.)

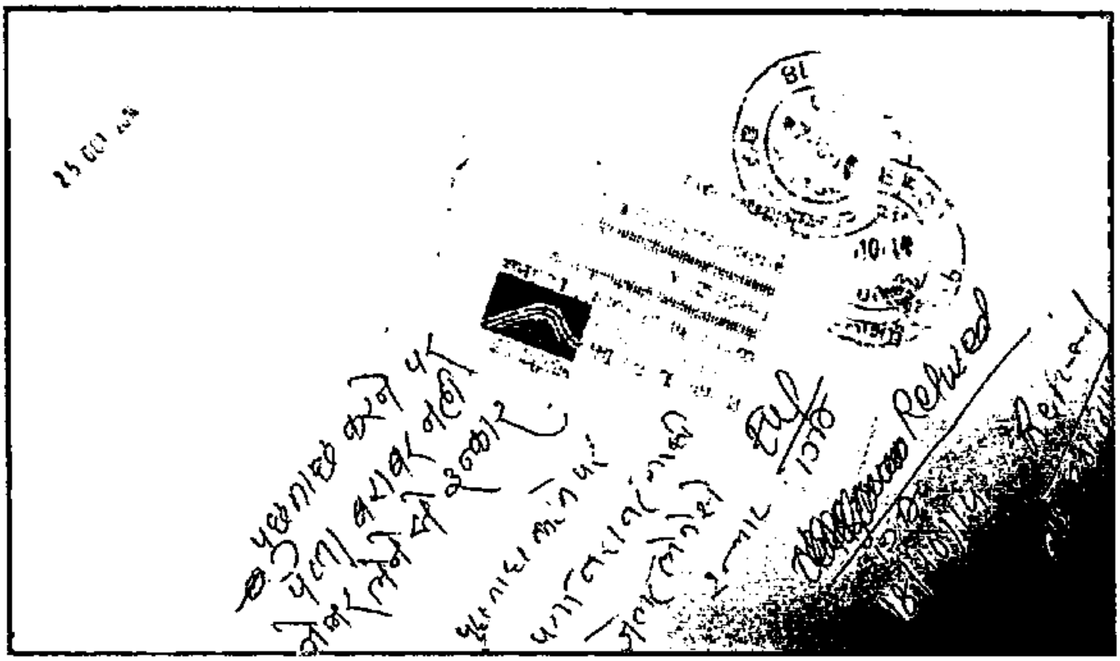

(आर्थर रोड जेल के जेलर ने हमारी आरटीआई को लेने से इंकार कर दिया यह कहते हुए कि पता सही नहीं है, जबकि ये आरटीआई जेल तक पहुंच चुकी थी. और ज़ाहिर सी बात है कि पता भी सही था.)

609

OFFICE OF THE SUPERINTENDENT: CENTRAL JAIL NO-8/9: TIHAR: NEW DELHI

AN ISO 9001: 2008 CERTIFIED JAIL.

Phone No: 011-28520695, 28520695, Extn. 486, 011-28520719

NO.F 8 & 9/SCJ-8&9/AS (UT)/2014/3378 DATE: 03-11-2014

RIGHT TO INFORMATION

Sub: - Regarding reply to RTI.

With reference to Letter NO.F.10 (1007)/ID-5622-Q/CJ/Legal/2014/9086-87 dated 16.10.2014 regarding the information seeking under RTI Act, 2005 by Sh. Afroz Alam Sahil, R/O F-56/23. Sir Syed Road, Batla House, Okhla, New Delhi-25.

In this regard the desired information is as under:-

1. Do not pertain to this office.
2. In this regard it is informed that the desired information cannot be provided as it attracts section 11(1) and 2(F) of the Right Act, 2005 and is also not accordance the provisions laid down in office Memorandum No8/2/2010- IR Dated 27.04.201, issued by the Govt. of India, Ministry of Personnel, PG & Pension, which holds that third party Information can not be disclosed unless the procedure the procedure prescribed in section 11 is completed.

It is further to inform that as per section 19 of the Right to information Act 2005, an appeal can be filed to the First Appellate Authority within 30 days of the issue of this information whose particulars are given below :-

Deputy Inspector General (Prisons)
Prison Headquarters: Near Lajwanti Garden,
Janakpuri, New Delhi – 110064.

Superintendent
Central Jail No.8/9,
Tihar, New Delhi

Superintendent
Central Jail No.8/9
New Delhi

To,

Sh. Afroz Alam Sahil, R/O F-56/23, Sir Syed Road, Batla House, Okhla, New Delhi-25.

Copy to:-

The Public Information Officer, Prisons Headquarter, Tihar, New Delhi.

(तिहाड़ जेल से मिला आरटीआई का जवाब...)

603

विशेष पोलीस महानिरीक्षक (कारागृह)
दक्षिण विभाग, भायखळा, मुंबई-8
दुरध्वनी क्र.23001177
23074508

पत्र

प्रति,
संदिप जैन, संचालक
भारत सरकार,
कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
नोर्थ ब्लाक, नई दिल्ली ११०००१

जा.क्र.विपोमनि/दवि/परवानगी/रिसर्च/१२४/2015 मुंबई दि.१४.01.2015

विषय :-माहिती अधिकार या विषयावर रिसर्च करण्याची परवानगी मिळणे बाबत.

संदर्भ :- आपल्या संस्थेचे क्र.१/१/२०१४ आयआर दि.१०.११.२०१४ प्राप्त दि.०३.०१.२०१५

उपरोक्त संदर्भांकित विषयान्वये कळविण्यात येते की, महाराष्ट्र कारागृह नियमावली १९७९ मधील चॅप्टर क्र.१९ प्रमाणे व मुख्यालयाचे परिपत्रक क्र.कारागृह भेट/परवानगी/२०१०/कक्ष -९ (३) ८६७८ दि.१४.१०.२०१० व परिपत्रक क्र.न्यावी/समाजकार्य महाविद्यालय/३३८३/१३ कक्ष-९ दि.२४.०३.२०१४ अन्वये खालील अटींचे अधीन राहून श्री.अफरोज आलम साहिल यांना मुंबई मध्यवर्ती कारागृह येथे माहिती अधिकार या विषयावर रिसर्च करण्याची परवानगी देण्यात येत आहे.

१. नियमानुसार माहिती प्राप्त करुन घेण्यासाठी दिनांक, वेळ व कालावधी याबाबत अधीक्षकांशी संपर्क साधावा.
२. स्वतःच्या ओळखपत्राची छायांकित प्रत अगोदर कारागृहाकडे सादर करावी तसेच अहवालाची एक प्रत कारागृह अधीक्षक व प्राचार्य दौलतराव जाधव, तुरुंग अधिकारी प्रशिक्षण, महाविद्यालय, येरवडा, पुणे यांना सादर करावी लागेल.
३. कारागृह भेटीच्या वेळी स्वतःचे ओळखपत्र कारागृह अधिका-यांना दाखवावे तद्नंतरच कारागृहात प्रवेश दिला जाईल.
४. कारागृहातील कोणत्याही बंदयाचे वा परिसराचे छायाचित्र काढता येणार नाही.
५. कारागृहात बंदीस्त असलेल्या न्यायाधिन बंदयांना त्यांचे सन्मा.न्यायालयाचे परवानगी शिवाय प्रत्यक्ष भेट देता येणार नाही.

६. बंद्यांशी न्यायालयीन प्रकरणी सदोष बंद्यांची परवानगी किंवा मुलाखत घेणार नाही अशी माहिती देण्यात येईल.

७. अभ्यासादरम्यान कारागृहातून संकलीत केलेली माहिती कोणतेही वृत्तपत्र व प्रसिद्धी माध्यमातून प्रसिध्द करणार नाही.

८. कारागृहात नेण्यास अयोग्य असलेल्या वस्तू कारागृहाच्या मेनगेटवर जमा कराव्यात.

९. कारागृहातील बंद्यांशी बेकायदेशीर स्वरूपाचे पत्रव्यवहार संबंध ठेवता येणार नाही.

१०. कारागृहाची सुरक्षितता, शांतता व सुव्यवस्थेत बाधा येईल अशी कोणतीही कृती करु नये.

११. कारागृहात रिसर्चसाठी आलेल्या व्यक्तीने मेन गेट नोंद वही क्र.११ मध्ये स्वहस्ते नोंद करण्यात यावी.

(मा.वि.पो.म.नि.(का) द.वि.मुंबई यांचे मान्यतेने)

(एन.के.नेमन)
प्र. स्वीय सहायक,
विशेष पोलीस महानिरीक्षक(का)
दक्षिण विभाग,मुंबई

प्रत :- अधीक्षक, मुंबई मध्यवर्ती कारागृह यांचेकडे माहिती व योग्य त्या कार्यवाहीसाठी अग्रेषित.

२/- भेट देणार-या व्यक्तीची संस्थेकडून यादी प्राप्त करुन त्यांची व त्यानुसार फोटो असलेले ओळखपत्र याची खात्री करुन कारागृह प्रवेशाबाबत कार्यवाही करावी. रिसर्च करण्यासाठी आलेल्या व्यक्तीची मेन गेट नोंद वही क्र.११ मध्ये स्वहस्ते नोंद करण्यात यावी. कारागृह सुरक्षा अबाधीत ठेवून कारागृह नियमांचे उल्लंघन त्यांचेकडून होणार नाही याची दक्षता घ्यावी कारागृहात होणा-या कार्यक्रम/प्रशिक्षणार्थी/भेटी/क्षेत्रकार्याची माहिती दर्शविणारे एक स्वतंत्र रजिस्टर ठेवून त्यामध्ये तपशीलवार नोंद घ्यावी.

माहिती अधिकारा अंतर्गत नियमानुसार देय असलेली माहिती आवश्यक खबरदारीसह पुरविण्यात यावी.

प्रत :- श्री.अफरोज आलम साहिल, यांना माहितीस्तव व कार्यवाहीस्तव अग्रेषित.

(एन.के.नेमन)
प्र. स्वीय सहायक,
विशेष पोलीस महानिरीक्षक(का)
दक्षिण विभाग,मुंबई

(आर्थर रोड जेल से मिला अनुमति पत्र)

607

OFFICE OF THE DIRECTOR GENERAL (PRISONS)
PRISON HEADQUARTERS : TIHAR
JANAK PURI : NEW DELHI

F.10(6355)/CJ/Legal/2014/ 14345 Dated : 13/1/15

To,

Sh. Sandeep Jain, Director (IR),
Government of India,
Department of Personnel & Training,
Ministry of Personnel, Public Grievances and Pensions,
North Block, New Delhi-110001.

Sub: Right to Information Fellowship, 2014

Sir,

This has a reference to your letter dated 10.11.2014 seeking permission to allow Sh. Afroz Alam Sahil to study the use of RTI Act by the Prisoners.

In this regard, I am directed to inform you that the Competent Authority has asked that proforma submitted by Sh. Afroz Alam Sahil will get be filled from 5-6 prisoners and the same will be sent to him.

Yours faithfully,

(SUNIL KUMAR)
LAW OFFICER (PRISONS)
DELHI

Copy for information and necessary action to:-

The Superintendent,
Central Jail No.2 & 8/9 alongwith the copy of the proforma submitted by Sh. Afroz Alam Sahil with the request to get it filled from 5-6 prisoners and send the same to this office positively by 15.01.2015.

(तिहाड़ जेल से मिला पत्र...)